॥ ओ३म् ॥

प्रभु से विनय

हम परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए यज्ञशाला में परणित होते हुए अपने विचारों का यज्ञ करते चले जायें। नाना प्रकार का संकल्प हो, संकल्प के साथ में हमारा एक मानसिक संकल्प हो, प्राण का ही उसमें निदान हो, उसके पश्चात् जब हम उसमें आहुति देते हैं तो वह आहुति द्यौ लोक को प्राप्त होती है। देवतागण उसको प्राप्त करते हैं और देवता जब तृप्त होते हैं तो राष्ट्रवाद को क्या, समाज को पवित्र बनाते चले जाते हैं। परमाणुवाद को ऊँचा बनाते चले जाते हैं। क्योंकि यह जितना जगत है यह सब परमाणुओं की ही रचना है। द्यौ लोक का जो घृत है उसमें कितने सूक्ष्म परमाणु होते हैं, और वह परमाणु जब अग्नि–उद्गाता बन करके और वायु अध्वर्यु बन करके जब उसका साकल्य उसमें प्रदान किया जाता है तो द्यौ लोक में कितनी महान गति होती है, कितना मानव का हृदय स्वच्छ और पवित्र होता है, ममता से रहित होता है, नाना प्रकार की विडम्बनाओं से रहित होता है उतना ही द्यौ लोक को मानव का संकल्प प्राप्त होता चला जाता है।

पूज्यपाद गुरुदेव

अंक : 500 समग्र अंक : 575
वर्ष : 42 समग्र वर्ष : 48

अनुक्रम

क्रम संख्या	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	प्रभु से विनय	पूज्यपाद-गुरुदेव	1
2.	अनुक्रम		2
3.	प्राचीदिग	पूज्यपाद-गुरुदेव	3-20
4.	पवित्र अन्न से आत्म-साक्षात्कार तथा परमानन्द की प्राप्ति	पूज्यपाद-गुरुदेव	21-36
5.	दान, पुस्तकों की सूची व प्राप्ति के स्थान तथा सूचना आदि		37-40

नम्र-निवेदन

समिति के बैंक के खाते में दान की राशि हस्तांतरण करने से दानदाताओं का नाम, पता व उद्देश्य इत्यादि की जानकारी बैंक से प्राप्त नहीं हो पाती इसलिए सभी दानदाताओं से नम्र-निवेदन है कि राशि बैंक के खाते में हस्तान्तरण करने के साथ समिति की वेबसाइट पर या निम्न किसी भी एक पते पर दान राशि की सूचना देने का कष्ट करें–

1. डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रकाश, प्रकाशन मंत्री
   ए-59, पंचशील एन्क्लेव, नई दिल्ली-110017, फोन : 011-26498737
2. सुश्री नीरू अबरोल, कोषाध्यक्ष
   K-3, लाजपत नगर,-III, नई दिल्ली-110024 फोन : 011-41721294

॥ ओ३म् ॥

प्राचीदिग

जीते रहो,

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा महिमावादी हैं और अनन्तमयी हैं और उसका ज्ञान और विज्ञान भी अनन्तता में सदैव निहित रहा है। तो आज का हमारा वेदमन्त्रः यह उद्गीत गा रहा था कि वह परमपिता परमात्मा अनन्तमयी हैं और जितना भी यह जड़ जगत अथवा चैतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रायः वह परमपिता परमात्मा दृष्टिपात आते रहते हैं। क्योंकि प्रत्येक मानव इस संसार के ऊपर नाना प्रकार के विचार विनिमय करता रहा है और यह नवीनतम नहीं सृष्टि के प्रारम्भ से ही यह नाना प्रकार की अपनी उड़ानें उड़ता रहा है। तो नाना रूपों में मानो देखो परमपिता परमात्मा को और अपने में ही इसको समर्पित करता रहा है। तो विचार आता रहा है कि यह परमपिता परमात्मा हमारे में ब्रव्हा कृतम मानो देखो हम इसे अपने में दृष्टिपात करते रहते हैं। परमात्मा का अनन्तमयी जगत हमारे मन मस्तिष्कों में समाहित हो जाता है और उसके ऊपर गम्भीरता से अपने में विचार-विनिमय करने लगते हैं।

मृत्युंजय बनने की मानव की आकांक्षा

मैंने बेटा! तुम्हें कई कालों में नाना प्रकार के विचार व्यक्त

करते हुए कहा था, क्या प्रत्येक मानव की एक ही आकांक्षा होती है क्या मेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिए? प्रत्येक मानव मृत्युंजय बनना चाहता है और इसके मन मस्तिष्कों में सदैव यह चिन्तन चलता रहता है, क्या मैं मृत्यु से पार हो जाऊँ। जितना भी मानव योगाभ्यास करता है, नाना प्रकार का पठन-पाठन करता है और उस पठन-पाठन में भी भिन्न-भिन्न प्रकार के विज्ञान को वह प्रायः अपने में अध्ययन करने में तत्पर रहा है और उस सर्वत्र विचारों में एक ही मन्तव्य रहता है कि मैं मृत्युंजय बन जाऊँ, मेरी मृत्यु नहीं आनी चाहिए। नाना प्रकार के दृव्यपति बनने की इच्छा रहती है और भी नाना प्रकार की प्रतिष्ठा में वह प्रतिष्ठित होना चाहता है। और वह यह चाहता है कि मेरी मनोनीतता इतनी विचित्र हो क्या मैं अपने में मानो मनोवृतम-परन्तु एक ही विचार होता है उसमें भी क्या मेरी मृत्यु नहीं आनी चाहिए। मैं मृत्युंजय बन जाऊँ। नाना प्रकार के विज्ञानवेत्ता अपने में उड़ाने उड़ते रहे हैं और ऐसी विचित्र उड़ाने उड़ते रहे हैं कि लोक-लोकान्तरों की यात्रा में भी प्रायः वह सफलता को प्राप्त हुए हैं। और साधना में भी परणित होते रहे हैं और यहाँ तक साधना की कि उन्होंने चन्द्रमा और पृथ्वी के मानो दोनों के मध्य में जहाँ एक दूसरे की आकर्षण शक्ति का समन्वय होता है, वहाँ भी जाने का वह प्रयास करता रहा है और वह वहाँ अपने साधना के केन्द्र भी उसने निर्माणित किए हैं। परन्तु उसके मन मस्तिष्क में एक ही वाक् रहता है, कि मैं अमृत मृत्युंजय ब्रह्मा, मेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिए। तो प्रत्येक मानव के हृदय में एक ही आकांक्षा लगी हुई है, क्या मैं मृत्युंजय बन जाऊँ, मेरी मृत्यु न हो जाए। और विचार आता है, एक वेद का मन्त्र यह कहता है, मृत्युंजय ब्रह्मतम बह्मा वर्णास्सुत ब्रह्मे मृत्यु, वेद का वाक्य यह प्रश्न करता है, कि हे मानव तू मृत्युंजय तो बनना चाहता है, परन्तु मृत्यु किसे कहते हैं, यह भी किसी काल में तुमने अपने में अध्ययन किया अथवा नहीं। परन्तु देखो जब मानव इस विचार में लगा, क्या मैं मृत्युंजय बन जाऊँ, यह मृत्यु है क्या। तो बेटा! ऋषि ने नाना प्रकार का अपना विचार दिया।

मृत्यु है क्या

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, कि एक समय बेटा! देखो महर्षि व्रेतकेतु ने एक सभा का आयोजन किया। वह बेटा! देखो महात्मा जमदग्नि के आश्रम में हुई। महात्मा जमदग्नि आश्रम में बेटा! देखो उन्होंने एक प्रसंग—ऋषि मुनियों ने एक प्रश्न किया कि अव्रतम मृत्युंजाम भूते वर्णस्सुताः। मानो देखो उनका एक ही मन्तव्य ऋषि मुनियों के समीप नियुक्त किया कि यह मृत्यु है क्या? तो बेटा! देखो उनमें से महर्षि प्रवाहण, महर्षि दालभ्य, महर्षि शिलक, महर्षि रोहणीकेतु, देवऋषि नारद, चाक्राणी गार्गी, महात्मा दिग्ध, महात्मा अर्द्धभाग और भी नाना ऋषिवर, ब्रह्मचारी और ब्रह्मवेत्ता महर्षि पिप्पलाद विद्यमान थे। तो यह प्रसंग उनके समीप आया कि मृत्युंजम ब्रह्मा। जब ऋषि मुनि एकत्रित हो गये, तो महर्षि जमदग्नि ने और पारेत्वर ऋषि ने एक प्रश्न किया और यह कहा हे ब्रह्मवेत्ताओं हमारे यहाँ एक नियमावली है, कि जब भी ऋषि मुनि एकत्रित होते हैं, उनका सम्मेलन होता है और वह समकालीन विद्यमान हो करके अपने विचारों को व्यक्त करते हैं और नाना प्रकार की जो मनों में मानो ग्रन्थियाँ लगी हुई होती हैं, उनका स्पष्टीकरण करना उनका कर्त्तव्य रहा है। तो हम यह चाहते हैं कि हमारा एक ही प्रश्न है, हम मृत्यु को नहीं चाहते, मृत्युंजय बनना चाहते हैं। आप हमें मृत्यु से पार ले चलिए। तो बेटा! देखो मृत्युंजम भविताम् भू वर्णनं, जब मृत्यु से पार होना चाहते हैं, मृत्युंजय ब्रव्हा तो जब मृत्यु अपनम ब्रह्मा। तो बेटा! देखो नाना ऋषियों में यह प्रसंग आया कि मृत्यु है क्या। तो बेटा! देखो इसमें महात्मा अर्द्धभागम ब्रहे—अर्द्धभाग ने कहा, ऋषि मुनि इस प्रश्न का तुम समाधान करो। तो कोई ब्रह्मवेत्ता का प्रथम उद्गीत गाने का प्रसंग नहीं आया, परन्तु देखो कोई भी उद्गीत गाने के लिए जब तत्पर नहीं हुआ, तो चाक्राणी गार्गी उपस्थित हुई और उसने कहा हे ब्रह्मवेत्ताओं यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं अपने वाक् को प्रारम्भ करूँ। तो महात्मा अर्द्धभाग ने कहा कि अवश्य कीजिए। तो उन्होंने कहा कि मेरे विचार में अब तक यह

आया है क्या शरीर और आत्मा, दोनों के विच्छेद का नाम मृत्यु कहा जाता है। अब मुनिवरो! देखो इसमें देवर्षि नारद मुनि बोले कि हे दिव्या यह वाक् तो तुम्हारा यथार्थ है, क्या शरीर और आत्मा का, दोनों का विच्छेद होना, परन्तु उसको मृत्यु शब्द नहीं बनता। यहाँ मृत्यु का प्रसंग है, यहाँ शरीर और आत्मा के त्यागने का प्रसंग नहीं है। तो मुनिवरो! देखो वह उतना उद्गीत गा करके, जितना उन्होंने अब तक जाना, उतना उच्चारण किया। क्योंकि ऋषियों का जो हृदय होता है, वह निष्पक्ष होता है और वह मानो देखो अपने में निरभिमानी होता है। वह अपने में शान्त विद्यमान हो गईं और इतने में महर्षि पिप्पलाद मुनि महाराज उपस्थित हुए।

पिप्पलाद जी ने यह कहा, कि भई मेरे विचार में तो यह आता है, कि मृत्यु अपने में कोई मृत्यु नहीं होती। उन्होंने कहा यह मृत्यु क्या है? तो ऋषि कहता है मृत्युमबाहा ज्ञानम् ब्रहे क्या संसार में यह जो मृत्यु है, **अज्ञान का नाम मृत्यु है** और अज्ञान को त्यागा मृत्यु से मानव पार हो जाता है। जहाँ वह ज्ञान के प्रकाश में वह रत्त हो जाता है, तो वह मृत्युंजय मानो देखो अपने में मृत्यु को त्याग देता है और प्रकाश में चला जाता है, जीवन उसे प्राप्त हो जाता है। तो मेरे प्यारे! देखो! महर्षि पिप्पलाद मुनि ने यह कहा, क्या संसार में मेरे विचार में, मैं अपना विचार व्यक्त कर रहा हूँ कि मृत्यु कोई वस्तु नहीं होती। देवर्षि नारद मुनि ने और महात्मा अर्द्धभाग ने इसका समर्थन किया, उन्होंने कहा यथार्थ है।

ज्ञान की विवेचना

मेरे प्यारे! देखो यह विचार विनिमय होने लगा कि ज्ञान क्या है और अन्धकार क्या है। तो मुनिवरो! देखो ज्ञान का होना ही, जानना ही प्रकाश है। किसी वस्तु को जानने का नाम प्रकाश कहा जाता है और वह जानाती जन्नम ब्रह्मा वर्णस्सुते देवाः। क्या प्रत्येक वस्तु के मूल को जानना, उसके गुणों का अपने में गुणाधनम् करने का नाम

ज्ञान माना गया है। तो इसीलिए बेटा! देखो हमें ज्ञानी बनना चाहिए। इससे पूर्व काल में मेरे प्यारे ! मेरे पुत्र महानन्द जी ने वर्णन किया क्या राजा के राष्ट्र की इन्होंने चर्चा करते हुए कहा क्या राजा को ब्रह्मज्ञानी होना चाहिए और ब्रह्मज्ञानी ही मानो देखो अपने राष्ट्र को उन्नत कर सकता है और नाना प्रकार की रूढ़िवाद को समाप्त कर सकता है। तो इसीलिए देखो जानना और रूढ़िवाद को, अन्धकार को नष्ट करने का नाम ही मानो देखो प्रकाश कहा जाता है।

महात्मा सत्यकाम और महर्षि गौतम का संवाद

वेदाम् भूतम् ब्रह्मा। तो मेरे प्यारे! देखो, जब मानव जितेन्द्रीय बन जाता है और जितेन्द्रीय बन करके ही वह अध्ययनशील होता है, तो वह नाना प्रकार की अग्नि का अपने में चयन करता है और अग्नि का चयन करता हुआ कहता है कि प्रकाशामभूतम ब्रह्मणे लोकाम् वाचस्सुताः। तो महर्षि पिप्पलाद ने कहा क्या हे ऋषि मुनियों तुमने देखो सबसे प्रथम तुमने महात्मा देखो सत्यकाम और देखो महर्षि गौतम का संवाद सभी को स्मरण आता रहता है। उन्होंने बेटा! देखो अपने सम्पर्क में आने के पश्चात् महात्मा गौतम ने यही कहा था क्या, जाओ तुम ज्ञानी बनो और ज्ञानी तुम तब बनोगे, मानो जब तुम निरभिमानी और सेवक बनोगे। तो मेरे प्यारे! देखो उन्होंने जब तीन दिवस और तीन रात्रि हो गये आचार्य के कुल में अध्ययन करते हुए, तो जब मुनिवरों! देखो उन्होंने प्रत्येक इन्द्रियों का जैसा गुरु ने उसे अवधान कराया और निर्णायक अपने विचार दिए उन्होंने कहा कि तुम इन्द्रियों के ऊपर अध्ययन करो। तो मुनिवरो! देखो प्रत्येक इन्द्री के ऊपर उन्होंने अध्ययन किया और अध्ययन करने के पश्चात् जब उनका मन और मस्तिष्क अध्ययन में मानो देखो जितेन्द्रीय—प्रत्येक इन्द्रियों का ज्ञान होने के पश्चात् उसके ऊपर अन्वेषण होने लगा। तो मुनिवरो! देखो वह अपने में जितेन्द्रीय बन गये और तीन दिवस के पश्चात् उन्होंने कहा प्रभु अब मुझे आज्ञा दीजिए। जो आप मुझे आज्ञा देंगे मैं उस क्रियाकलाप को अवश्य कर पाऊँगा। उन्होंने कहा

हे सत्यकाम जाओ तुम मानो ये गऊएं हैं—यह चार सौ गऊएं जब तक ये एक सहस्र नहीं हो जाएं जब तक मेरे आश्रम में तुम्हारा आना, तुम प्रवेश नहीं करोगे। मेरे प्यारे! देखो उन्होंने कहा बहुत प्रियतम। प्रभु मैं क्या करूँगा उनके पीछे उद्गीत गाता हुआ? उन्होंने कहा इनके घृत और इनके दुग्ध के द्वारा मानो तुम याज्ञिक बनो और याज्ञिक बन करके ही हे मुनिवरो ! तुम देखो ब्रह्मणे ब्रहा सुन्धनम्! और उसके पश्चात् तुम अग्न्याधान करो और प्रकाश का ज्ञान करते हुए मानो देखो उनकी सेवा, आज्ञा का पालन करना है।

महात्मा सत्यकाम का याग

मुनिवरो! देखो महात्मा सत्यकाम ने उसी वाक् को लेकर के आचार्य की वह चार सौ गऊओं को लेकर उन्होंने देखो प्रस्थान किया और मुनिवरो! जहाँ वह गऊ जातीं वहीं वह ब्रह्मचारी भी उनके पीछे गमन करने लगा। तो मेरे प्यारे ! देखो उनका क्रियाकलाप था कि प्रातः कालीन गऊओं के घृत और देखो अमृतम दुग्ध के द्वारा समिधाओं को प्रदीप्त करता हुआ वह नित्य प्रति मानो देखो याग करता था। अग्न्याधान किया समिधाओं के द्वारा और वह कहते हे प्राणवर्धक, हे यज्ञमयी देवत्वाम्, हे महादेवा, हे महादेव मैं तेरे समीप आया हूँ तू मेरा कल्याण कर। तो बेटा! देखो वह जब प्रातः कालीन मेरे प्यारे! सूर्य उदय के साथ ही जब याग का प्रारम्भ करता उद्बुद्ध स्वाहा अग्नि का वह उद्गीत गाने लगा। तो मेरे प्यारे! देखो उसके अन्तर्हृदय में, मन मस्तिष्क में बेटा! देखो एक प्रकाश उद्बुद्ध होने लगा। इस प्रकाश को लेकर के उसके मन मस्तिष्क में एक मानो देखो नवीन प्रकार की तरंगें उत्पन्न होने लगी। मेरे पुत्रों! मुझे कुछ ऐसा स्मरण आ रहा है। महात्मा सत्यकाम मेरे प्यारे! देखो सत्यकाम को लगभग देखो अमृतम **बारह वर्ष का उनका अनुष्ठान था।** बारह वर्ष के पश्चात् मेरे प्यारे! वह चार सौ गऊएँ उनमें और भी अनुष्ठान किए परन्तु उनमें जब वे एक सहस्र गऊएँ हो गईं तो एक समय बेटा! हिमालय की कृतियों में विद्यमान थे और विद्यमान हो करके बेटा! वह

प्रातः कालीन याग कर रहे थे। तो याग के पश्चात् कहते हैं कि एक वृषभ ने कहा मानो एक वृख ने कहा हे ब्रह्मचारी ! हे सत्यकाम! हम एक सत्रह हो गये हैं तुम हमें गुरु के आश्रम को ले चलो।

महात्मा सत्यकाम को वृषभ द्वारा प्रथम कला का ज्ञान

मेरे प्यारे! देखो सत्यकाम ने कहा बहुत प्रिय। तो वृषभ कहता है कि मैं तुम्हें चार कलाओं का ज्ञान करा देता हूँ। सबसे प्रथम उन्होंने चार कलाओं का ज्ञान कराया। उन्होंने कहा प्राचीदिग, दक्षिणीदिग और देखो प्रतीचीदिग और उदीचीदिक्। ये चार प्रकार का उन्होंने ज्ञान कराया। उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारी मानो देखो प्राचीदिग में देखो सूर्य उदय होते हैं और वह प्रकाश का द्युतक है। प्रातः कालीन मानो देखो अन्धकार को नष्ट करता हुआ वह प्रकाश का द्युतक बन करके आता है। वह देखो प्राचीदिग में अग्नि का वास है, यह अग्निमयी परमपिता परमात्मा जो अग्निमयी स्वरूप है, वह अग्निमयी स्वरूप मानो देखो प्रकाश का द्युतक है और वह मानो द्यु में रत्त रहने वाला है। हे ब्रह्मचारी तुम उस मानो देखो सबसे प्रथम कला का नाम प्राचीदिग कहा जाता है। प्राचीदिग का अभिप्राय यह है कि सूर्य में जो प्रातःकालीन मानो देखो अग्नि का कुंज, वह कुंज होता है किरणों के द्वारा इसी प्रकार प्राचीदिग में परमात्मा अग्निमयी स्वरूप माना गया है। तो मानो देखो वह प्राचीदिग है, वह अपने में ब्रह्मणं बह्मा व्रतम् देवत्त्व को अपने में घारण करता रहता है। वह प्रातःकालीन मानो देखो ध्यानावस्थित होते हैं और वह मन और मस्तिष्क को एकाग्रह करते हुए प्राचीदिग अग्नि का ध्यान करते हैं। जो पूर्व दिशा में जिसका प्रकाश आता है, उस प्रकाश को जब अपने में घारण करते हैं तो बेटा! उनका एक अमृतम् देखो एक अमृत को वह प्राप्त करते रहते हैं। तो प्राचीदिग कला सबसे प्रथम कला का उन्होंने ज्ञान कराया।

अग्नि के भिन्न-भिन्न स्वरूप

प्राची कहते हैं पूर्व दिशा को—जिस पूर्व में मानो देखो वह

सूर्य भी मानो अपनी आभा को प्राप्त करता हुआ अपने में निर्तण्ड करने लगता है और वह मन में देखो मस्तिष्क में उस अग्नि का ध्यानावस्थित करता हुआ बेटा! प्रकाश में रत्त हो जाता है। वह अग्नि मानो देखो काष्ठो में रहने वाली अग्नि है, वही अग्नि ब्रह्मा अग्नि बन करके मानव के अन्तर्हृदय में प्रदीप्त होती रहती है। जब ब्रह्मचारी के हृदय में अग्नि को जागरूक किया जाता है तो उस अग्नि का स्वरूप भिन्न हो जाता है, उसको गार्हपत्य नाम की अग्नि से मानो वर्णन कर दिया जाता है। वही अग्नि जब गर्हपत्य मानो गृहस्वामी और गृहस्वामीनी के गृह में प्रदीप्त होती है, तो वही अग्नि मानो देखो वह गर्हपत्य नाम की अग्नि बन जाती है। और वही अग्नि जब विद्यालयों में पनपती रहती है, वही अग्नि वानप्रस्थ के हृदय में मानो प्रविष्ठ होती रहती है तो वानप्रस्थ विद्यालयों में अध्ययन कराता रहता है। इसी प्रकार वेदाम् भूतम् वही अग्नि जब वैश्वानर की अग्नि बन करके चलती है गर्हपत्य और गार्हपत्य, गार्हपत्य वैश्वानर देखो आवहनीय अग्नि जब प्रवेश हो करके बेटा! देखो वह ब्रह्मा अग्नि वह ब्रह्म में मानव को परणीत करा देती है। तो विचार आता है, बेटा! यहाँ अग्नि के भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वरूप माने गये हैं। यहाँ जब ब्रह्मचारी के हृदय में अग्नि प्रदीप्त होती है, तो वह ब्रह्मचारी मानो देखो अध्ययन करता है और अपने में अध्ययन करता हुआ मानो देखो उसे जानने के लिए तत्पर हो जाता है। प्रत्येक वस्तु को जानता है। हे ब्रह्मचारी ! तू यदि ब्रह्मचर्य को तुमनें जान लिया है और ब्रह्म में निष्ट हो गया है, तो तू सर्वत्र विज्ञान का कुंज बन गया है और ज्ञान का द्युतक बन गया है।

गार्हपत्य अग्नि–भगवान् कृष्ण का बाल्यकाल

इस प्रकार तुम मानो देखो **सबसे प्रथम अग्नि** का नाम गार्हपत्य नाम की अग्नि है। उस गार्हपत्य नाम की अग्नि में कौन तपता है, ब्रह्मचारी तपता है। जब प्रातः कालीन वह अपने में मानो नृत करने लगता है, प्रातःकालीन गृह को त्याग देता है। मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है भगवान् कृष्ण का जीवन। जब महर्षि व्रणीकेतु अपने

आचार्य के कुल में जब वह अध्ययन करते थे तो प्रातःकालीन मानो देखो जब वह अन्तरिक्ष में तारामण्डलों की छाया रहती उस समय वह संदीपन ऋषि के आश्रम में अध्ययन करते थे। तो उसी काल में अपने आसन को त्यागना और त्याग करके अपनी शारीरिक क्रियाओं से निवृत्त हो करके वह बेटा! देखो वह अपने में शान्त मुद्रा में मन और मस्तिष्क को, दोनों को अपने में एकाग्र करने का प्रयास करते। मन और प्राण को, दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास करते। तो बेटा! वह योगाभ्यास करते रहते जिससे प्राण का निदान करना और प्राण को यह दृष्टिपात करना कि यह प्राण मानो देखो अपान में, अपान में प्रविष्ठ होने से क्या होता है। और देखो प्राण और अपान को जब व्यान में प्रविष्ठ कर दिया जाता है, तो उसका क्या प्रभाव और क्या प्रतिक्रिया होती है। और जब उसी प्राण को सामान्य प्राण में जब प्रवेश कर समन्वय कर दिया जाता है तो उसका क्या प्रभाव होता है और जब यही उदान में प्रवेश हो जाता है तो उसका क्या प्रभाव होता है। तो मेरे प्यारे! इन प्राणों का निदान करने से मानव अपने में देखो जब अवधान करने लगता है। तो मुझे ऐसा स्मरण है क्या वह भगवान् कृष्ण जब इस प्रकार मानो अपने प्रातःकालीन बाल्यकाल में इस प्रकार का अपना क्रियाकलाप बनाते और क्रियाकलाप बना करके मानो देखो उसके ऊपर अध्ययन करना तो वह गार्हपत्य नाम की अग्नि है। जो आचार्य के चरणों में विद्यमान हो करके अपने में प्रश्नों और उत्तरावलियों में वह निहित होते हैं और वह यह उच्चारण करने लगे हे प्रभु! अमृतम अमृमब्रहे देवत्वाम् मैं अमृत का पान करना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! देखो उन्होंने कहा ब्रह्मचारी तुम मानो देखो अग्नि का ध्यान करो और ब्रह्मा अग्नि को अपने में जागरूक करो। परन्तु वह ज्ञानरूपी अग्नि में जो ब्रह्मा अग्नि बन करके मेरे प्यारे! देखो उसमें निहित होती रहती है।

देखो, संदीपन ऋषि ने कहा हे ब्रह्मचारी हमारे जो पूर्वज हुए हैं आचार्यजन उन्होंने देखो इसी अग्नि को या गार्हपत्य नाम की अग्नि

का चयन करते हुए उन्होंने अपने जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों को उद्बुद्ध करने का प्रयास किया है। क्योंकि मानव का, **यह जो प्राणों का समूह है और मन का जो क्षेत्र बना हुआ है यही तो मानो देखो चित्त के संस्कारों का यह चित्त का क्षेत्र माना गया है** जो बाह्य जगत और आन्तरिक जगत दोनों से इसका समन्वय रहता है। बाह्य जगत मानो देखो यह संसार कहलाता है। बाह्य जगत में भी कई प्रकार की श्रेणियाँ हैं, मानो कहीं देखो, कहीं वह देखो वह सतोगुणी बन जाता है। कहीं रजोगुणी तो कहीं तमोगुणी प्रवृत्ति वाला बनता है। परन्तु यह सब बाह्य जगत है और जब यह आन्तरिक जगत में प्रवेश करता है तो बेटा! मन मस्तिष्क को एकाग्र करता हुआ और देखो मनस्तत्त्व की आभा में रत्त हो जाता है और उस समय में जो, जो हृदय में संस्कार चित्त के मंडल में समाहित होते रहे हैं, उन संस्कारों को उद्बुद्ध करना चाहता है। परन्तु देखो बाह्य इन्द्रियों को, वह बाह्य जगत को जब अन्तर्जगत में ले जाता है तो मानो देखो वह दुष्कर्मों का मानो देखो क्षय होना प्रारम्भ हो जाता है। तो मेरे प्यारे! देखो इस प्रकार के ब्रह्मचारी जब अपने में साधना करता है, क्योंकि एक अक्षर बोधि बना हुआ है, एक मानव साधना में परिणत होने वाला है। तो मानो उसका कर्म और वचन दोनों एक ही सूत्र में सूत्रित हो गये हैं। मेरे पुत्रो! देखो जब दोनों एक सूत्र में सूत्रित हो जाते हैं, तो अपने क्रियाकलापों में वह महान और पवित्र बनने का प्रयास करता है। यदि मानव एक अक्षरों का बोधि, बोधि है। वह अक्षरों को अपने में उद्बुद्ध कर रहा है परन्तु यदि उसके अनुसार कर्म नहीं कर रहा है, तो मुनिवरो! देखो अपंग बन रहा है। वह अपंग कहलाता है। जैसे राजा के राष्ट्र में मानो देखो एक धर्म है और एक कर्म है राजा का राष्ट्र भी देखो बिना कर्म के अंध कहलाता है और मुनिवरो! यदि वह उस कर्म के साथ में ज्ञान है और ज्ञान के साथ में कर्म है तो बेटा! देखो वह अपने मानवीयत्व को ऊर्ध्वा में गमन करता है। राजा मृत्यु से पार हो जाएगा। तो इसी प्रकार ब्रह्मचारी भी अपने से मृत्यु से पार

हो जाते हैं जब गार्हपत्य नाम की अग्नि का पूजन करते हैं। वह अग्नि मानो देखो कहीं वह अग्नि हमारे अन्तर्हृदयों में देखो कहीं वह नेत्रों की ज्योति बन करके मानो ज्योतिवान है, उसी अग्नि के माध्यम से शब्दों का समन्वय दिशाओं से हो जाता है। वह कहीं दिशाओं में अपने को समाधान करता हुआ मुनिवरो! उसी में रत्त रहता है और इसी प्रकार वह मृत्युंजम भवातम् ब्रह्मे देवत्वाऽम्। तो मुनिवरो! देखो वह उस अग्नि का ध्यान करता हुआ अपने में देखो ज्ञानरूपी अग्नि को जो हृदय में प्रदीप्त हो रही है। जिसमें मानो सर्वत्र इन्द्रियाँ बिन्धी हुई रहती हैं सर्वत्र इन्द्रियों की माला बन जाती है और उस माला को मानो धारण करने वाला एक मानो देखो सजातीय ब्रह्मचारी कहलाता है। मेरे पुत्रों! देखो जब वह अपने में धारयामि बनते रहे तो अमृतियों में प्राप्त हो करके मेरे प्यारे! देखो आचार्य से नाना प्रकार के प्रश्न और उत्तरावली में लग जाते और जब वह उत्तर देते-देते अपने में मौन हो जाते तब तक मानो ब्रह्मचारी अपने में सान्त्वना को प्राप्त नहीं होता।

भगवान् कृष्ण और संदीपन ऋषि का संवाद

मेरे प्यारे! देखो मुझे स्मरण आता रहा है जब मुनिवरो! देखो भगवान् कृष्ण एक समय प्रातःकालीन संदीपन ऋषि के आश्रम में बेटा ! नैतिकता के लिए जब ऋषि ने सब ब्रह्मचारी को उपस्थित किया तो उन्होंने यह प्रश्न किया कि हे महाराज, हे आचार्यजन, हे पूज्यपाद आप नित्य प्रति मानो देखो नैतिक शिक्षा में हमें ले जाते हैं हम सदैव यह जानना चाहते रहते हैं हे प्रभु! प्राचीदिग किसे कहते हैं? उन्होंने कहा प्राचीदिग कहते हैं कि परमात्मा का जो स्वरूप है, वह मानो देखो प्रकाश में रहता है। जैसे देखो दो पक्ष हैं एक माह में एक उत्तरायण है तो एक दक्षिणायन कहलाता है। मानो उत्तरायण में प्रकाश है और दक्षिणायन में देखो अन्धकार माना गया है। तो मानो देखो इसी प्रकार दोनों की रत्ता में रत्त रहने वाले का नामकरण ही अपने में अवृत कहलाता है। तो इसके ऊपर तुम्हारा विचार होना

चाहिए। भगवान् कृष्ण बोले हे प्रभु! चलो यह भी वाक् मैंने जान लिया है। परन्तु मैं ये जानना चाहता हूँ, कि प्रभु यह प्राचीदिग है, यह क्या है? उन्होंने कहा प्राचीदिग का अभिप्राय यह जो पराविद्या को जानने वाला है। जो पराविद्या को जान करके आचार्य ब्रह्मचारी को पराविद्या दे करके सबसे प्रथम उसके मानवीय जीवन को सजातीय बना देता है। जब आचार्य उसके मानवीय जीवन को इन्द्रियों में, ब्रह्मज्ञान को प्रतिष्ठित करा देता है तो मानो देखो वह अपने में अपने वर्णों को तट पर ले जाता है। देखो, ब्रह्मचारी अपने में महान् बन जाता है। मेरे प्यारे! देखो उस समय उन्होंने जब यह शान्त होने लगे तो पुनः ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु! यह प्राचीदिग क्या है? उन्होंने कहा यह प्राचीदिग मानो देखो अग्नि की दिशा है, और अग्नि मानो देखो काष्ठों में नहीं मानो जो द्यु में प्रकाश देती है और द्यु से मानव के मन मस्तिष्क में रत्त होती है और वही अग्नि मानो देखो प्रकाश में रत्त हो करके दिशाओं को जानने वाला बनता है। वही दिशाओं को जैसे प्राचीदिग है, वह एक दिशा भी है, अग्नि भी है, वह अग्रणीय बना करके मानव को प्रकाश देती है जिससे मानव को एक मार्ग प्राप्त होता है। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा कि इसका नाम ही प्राचीदिग कहा जाता है।

जब पुनः आचार्य से ब्रह्मचारी ने कहा कि प्रभु यह प्राचीदिग क्या है? उन्होंने कहा प्राचीदिग वह है मानो जो ज्ञान का कुंज कहलाता है। ब्रह्मचारी जब प्रातःकालीन अध्ययन करता है वह पूर्वा मुख हो करके ही, पूर्वा मुख बन करके जब वह अध्ययन करता है तो उसकी स्मरण शक्ति में जागरूकता आ जाती है और स्मरण शक्ति बलवती होती है। इसलिए प्राचीदिग को, दिशा को ले करके जब वह अध्ययन करता है और दिशा का देखो अपने में समन्वय करता रहता है। तो वह ज्ञान के कुंज में प्रवेश हो जाता है। तो इसीलिए उसका नाम प्राचीदिग कहा जाता है। उन्होंने कहा प्रभु यह भी मैंने जान लिया परन्तु हे आचार्यजन ! यह प्राचीदिग क्या है? उन्होंने कहा

प्राचीदिग ये पूर्वाम भूतम् ब्रह्मा मानो देखो वह परमात्मा प्रकाश का कुंज कहलाता है इसलिए ब्रह्मा अग्नि का नाम प्राचीदिग कहा जाता है जो ब्रह्म अग्नि में आचार्यजन अपने को ले जाता है। ब्रह्म अग्नि को जागरूक करता है। **ब्रह्मा अग्नि क्या है?** क्या ब्रह्म के प्रकाश को अपने में रत्त करना, प्रकाश का ज्ञान और विज्ञान को अपने में ध्यानावस्थित होना और उसकी मानो देखो रचना के ऊपर अपना विचार विनिमय करने का नाम प्राचीदिग कहा जाता है। वह प्राचीदिग में प्रवेश होने के पश्चात् उसके जीवन में अन्धकार नहीं आता। वह अन्धकार से दूरी हो जाता है और अन्धकार में प्रवेश न करना ही मानो देखो जीवन का प्रकाश माना गया है। मेरे प्यारे! ऋषि ने अपना मन्तव्य जब प्रगट किया, तो उस समय भगवान् कृष्ण ने यह कहा, उनका बाल्यकाल था, मानो देखो ब्रह्मचर्य का जो काल होता है वह बड़ा निर्मल होता है, बड़ा निष्पक्ष होता है और आत्मीयता में होता है। तो उन्होंने कहा प्रभु मैं सदैव, मेरे द्वारा यह प्रसंग बना रहता है, क्या मृत्युंजम ब्रह्मा लोकाम् ब्रह्म अव्रहे यह प्राचीदिग क्या है भगवन्? उन्होंने कहा प्राचीदिग कहते हैं जो दोनों का मिलान करता है, मानो देखो पूर्व दिशा पूर्वाम ब्रहे मानो देखो पूर्वामुख और पूर्वा ज्ञान जब इन दोनों का समन्वय कर लेता है। दोनों का मानो परस्पर उसका मिलान हो जाता है। जैसे मन और प्राण का दोनों का समन्वय होने से बेटा! वह योगेश्वर बन जाता है। वह योगेश्वर बन करके वह अपने में तत्पर रहता है। देखो, उस परमात्मा की प्राचीदिग अग्नि को अपने में धारण करता हुआ मानो देखो गार्हपत्य अग्नि का वह चयन करता है। मेरे प्यारे ! गार्हपत्य अग्नि में ब्रह्मा अग्नि का वह समन्वय करने लगता है।

इस प्रकार बेटा! जो उन्होंने निर्णायक अपने विचारों को दिया तो भगवान् कृष्ण ने जब पुनः प्रश्न करने लगे प्रभु प्राचीदिग क्या है? तो उन्होंने कहा कि परमात्मा का नाम ही प्राचीदिग है। वह प्रा है, वह प्रा में रहने वाला, हमारे अन्तर्हृदयों में प्रवेश होने वाला उसको

हम ध्यानावस्थित करें। मेरे प्यारे! देखो जब उन्होंने, ऋषि ने यह कहा—हे कृष्ण तू अति प्रश्न मत कर देना अन्यथा देखो तुम्हारा मन मस्तिष्क गिर जायेगा। मेरे प्यारे! देखो उन्होंने कहा प्रभु यह तो ब्रह्मचर्य का आभूषण है। ब्रह्मचारी का आभूषण है प्रश्नों को करना। परन्तु जब तक उसका निर्णायक, उसका अन्तरात्मा निर्णय पर नहीं पहुँच सके, तब तक वह प्रश्न करता ही रहेगा आचार्यजन। तो आचार्य ने कहा तो प्रश्न करते चले जाओ। उन्होंने कहा प्रभु मैं, आगे प्रश्न नहीं करूँगा जब कोई और प्रसंग आयेगा तो मैं उद्गीत गाऊँगा।

मानो देखो उन्होंने अग्नि का चयन करते हुए नाना प्रकार की अग्नियों का चयन किया जो बेटा! विद्यालयों में आचार्य और ब्रह्मचारी के मध्य में जो अग्नि प्रदीप्त हो रही है उसका नाम ही प्राचीदिग कहा जाता है। मेरे प्यारे! आचार्य अपनी स्थली पर विद्यमान हैं, चरणों में ब्रह्मचारी है और वह कहता है, हे ब्रह्मचारी तुम आओ, मृत्युंजय बनने का प्रयास करो। परन्तु देखो मृत्युंजय वही बनता है जो प्रकाश को जान लेता है। जो प्रकाश को नहीं जानता वह अन्धकार को नष्ट नहीं कर सकता। जो अन्धकारम् भूतम् ब्रह्मा अज्ञानाम् भूते देवत्वाऽम्—अज्ञान को त्यागना ही मानो देखो जीवन कहा जाता है।

मुझे बड़े प्रिय ये वाक् लगे हैं। मैं अपने महानन्द जी के इन विचारों का बड़ा समर्थन करता रहता हूँ और यह उच्चारण करता रहता हूँ कि राजा का राष्ट्र भी उसी काल में ऊँचा बनता है, जब राजा देखो राजा अपनी अग्नि का चयन करने लगता है। जो अग्नि प्रदीप्त हो करके राजा के राष्ट्र को मानो प्रकाश में ले जाती है वही अग्नि मुनिवरो! राष्ट्रवाद को ऊँचा बनाती है। जैसे विद्यालयों में आचार्य के अंग-संग रहने वाले ब्रह्मचारी मानो अपने में प्रकाश को पाते हैं। मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जिस काल में विज्ञान पनपता है इस संसार में।

महाराजा अश्वपति के काल में शिक्षा प्रणाली

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब महाराजा अश्वपति के यहाँ विज्ञान पनपा तो विज्ञान में नाना प्रकार के यन्त्रों का अवधान होना चाहिए। विज्ञान का दुरुपयोग न हो करके उसका सदुपयोग होना चाहिए और सदुपयोग में क्या-क्या मानो देखो नाना प्रकार के यन्त्र ऐसे होने चाहिए जो विद्यालयों में स्थिर रहने चाहिए। और विद्यालयों में जो आचार्य विद्या अध्ययन कराता है मानो उसकी जो प्रवृत्ति है, उसका अवधान होना चाहिए। और उसकी मानो देखो उसके शब्द, उसका चित्र उसकी अन्तः और बाह्य जगत की भावनाएं देखो उस चित्र में आनी चाहिए। जिससे मानो हिंसा और अहिंसा का देखो मानव को यह प्रतीत हो जाए कि यह हिंसा है और यह अहिंसा है। क्योंकि देखो आचार्यों का मन मस्तिष्क जब एकाग्र नहीं होता और वह ब्रह्मचारियों को अध्ययन कहीं करा रहे हैं तो मन की प्रवृत्ति कहीं ओर है और उसका मानो आचरण कुछ और है, जितेन्द्रीय नहीं है। तो मेरे प्यारे! उच्चारण करते-करते जब मन की चंचल प्रवृत्ति बन जाती है तो वह चंचल प्रवृत्ति जो तरंगे बन करके आचार्य के हृदय से उनके मन मस्तिष्क से वह ब्रह्मचारियों के हृदय में प्रविष्ट हो जाती हैं और ब्रह्मचारी जब देखो उसका अध्ययन करता है तो उनके मन मस्तिष्क की जो तरंगें है वह यदि शुद्ध तरंगें हैं तो शुद्धीकरण होगा, अशुद्ध तरंगें हैं तो अशुद्धियाँ उसमें प्रविष्ट हो जायेंगी।

देखो, महाराजा अश्वपति के यहाँ सुदेश नाम के देखो वैज्ञानिक थे, उन वैज्ञानिकों ने एक यन्त्र का निर्माण किया था। राजा के राष्ट्र में जब मुनिवरो! देखो अमृतम एक विद्यालय में अध्ययन कराने वाली कन्याओं को ब्रह्मचारिणी अध्ययन करा रही थी—आचार्यजन तो उसकी मन की प्रवृत्ति चंचल हो गई। चंचल होने के कारण मेरे प्यारे! देखो वह प्रवृत्ति उसकी यन्त्रों में प्रवेश हो गई। जब यन्त्रों में प्रवेश हो गई—जब यन्त्र ले गये चंचल प्रवृत्ति की तरंगें देखो भिन्न हैं, अशुद्धता की अमृतम् देखो शुद्ध भिन्न हैं। दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों में जब रत्त

हो गये तो राजा ने कहा विद्यालय से इसको पृथक् करो। विद्यालय से पृथक किया जाना चाहिए क्योंकि मन मस्तिष्क से ही देखो वह जब ब्रह्मचारियों का मन मस्तिष्क इसके मन मस्तिष्क से समन्वय नहीं होगा, और देखो उसका संगतिकरण नहीं होगा तो विद्या अध्ययन नहीं की जाएगी, चंचलता अवश्य आयेगी। तो देखो आचार्य के हृदय में जब वह अध्ययन कराता रहे इतना स्वच्छ हृदय होना चाहिए, उसका आहार और व्यवहार भी पवित्र हो। जिससे मानो देखो उसका मन, मस्तिष्क महान् बन करके और ब्रह्मचारी उस विद्या को अध्ययन करके ब्रह्मचारी अपने में महान बन जाए। और पवित्रता को प्राप्त हो करके बेटा! राष्ट्र का संगतिकरण, राष्ट्र का मानो छात्रवत अपने में पवित्र बन जाए। और राजा देखो बुद्धिमान ब्रह्मवेत्ता हो करके मन मस्तिष्कों को दृष्टिपात करके बेटा! उसका निर्वाचन होना चाहिए। तो मेरे प्यारे! अमृतम् ब्रह्मा व्रतम् देवा अमृत को प्राप्त करता हुआ अपने में महानता को प्राप्त होना ही हमारा कर्त्तव्य है।

मानव का मन, मस्तिष्क ऊर्ध्वा में गमन करे

आओ मेरे प्यारे! देखो मैं तुम्हें उद्गीत गा रहा था, उच्चारण कर रहा था क्या मानव का मन मस्तिष्क मुनिवरो! देखो ऊर्ध्वा में गमन करना चाहिए। तो वही ब्रह्मचारी सत्यकाम मेरे प्यारे! देखो, जब एक सहस्र गऊए हो गईं, तो सबसे प्रथम वृषभ ने कहा हे प्राचीदिग अग्नि का तुम चयन करो। हे ब्रह्मचारी ! तुम्हारा जो चयन है वह प्राचीदिग अग्नि में होना चाहिए। जो अग्नि तुम्हारा अवधान है और मानो देखो इससे तुम्हें मैं पहली कला का ज्ञान तुम्हें प्राचीदिग करा रहा हूँ और देखो इससे द्वितीय अग्नि का नाम द्वितीय मानो देखो दुः अमृतम् द्वितीय ब्रहा देखो द्वितीय कला का ज्ञान हमारे यहाँ देखो वह दक्षिणीदिग है जिस दक्षिणाय की चर्चा मैं बेटा! तुम्हें कल प्रगट कर सकूँगा क्योंकि दक्षिणाय का अर्थ ही कुछ और है।

दक्षिणाय

दक्षिणाय कहते हैं, बेटा! देखो इन्द्र की दिशा है जहाँ जितेन्द्रीय बन करके मेरे प्यारे! देखो वह दक्षिणाय को प्राप्त करता हुआ वह नाना प्रकार की विद्युत कला में मानव तत्पर रहता है। विद्युत कला का समन्वय दक्षिणाय से रहता है। हमारे यहाँ बेटा! जब अमृतम् देखो **ब्रह्मचारी अपने में जब शयन करता है तो अपने मस्तिष्क को मुनिवरो! देखो वह देखो दक्षिणाय को करके अपने में शयन करता है** और शयन करता इन्द्र की दिशा को प्राप्त करता है। इन्द्र नाम के पर्यायवाची शब्द हैं, क्योंकि इन्द्र नाम राजा को जहाँ कहा जाता है वहीं इन्द्र मेरे प्यारे! देखो हमारे यहाँ इन्द्रो ब्रह्मा देखो इन्द्र नाम वायु को कहा गया है। इन्द्र नाम परमात्मा का और वायु का विशेषकर जो वायु देखो अणु वृत्तियों में रत्त रहने वाली है। जिसका ध्यानावस्थित हो करके बेटा! वह मानो देखो दक्षिणायन बनता रहता है और दक्षिणायन के सूर्यों का भी अपने में अवधान करता रहता है। जो बेटा! देखो अन्नाद का स्वामी है वही मुनिवरो! देखो, इन्द्र वायु शचि बन करके मेघ मण्डलों को बेटा ! छिन्न-भिन्न करके वृष्टि का द्युतक कहलाता है। वही वृष्टि के मूल में विद्यमान होता है। तो मेरे प्यारे! देखो उसे, गऊ के बछड़े को ले करके पृथ्वी के गर्भ में बीज की स्थापना करके कृषक अपने में प्रसन्न हो करके, बेटा! देखो अन्नाद की उत्पत्ति करने वाला है। वह उपकर्म भूतम् ब्रह्मे मानो देखो उसमें कितना सहायकता की आवश्यकता है। यही तो प्रभु का जगत है, यह संगतिकरण माना गया है। जो बेटा! देखो दक्षिणायन दिशा में विद्यमान रहता है। जिसकी चर्चाएँ मेरे प्यारे! मैं कल प्रगट करूँगा।

मानव को प्राचीदिग बनने की प्रेरणा

आज का विचार विनिमय क्या मानव को प्राचीदिग बनना चाहिए। ब्रह्मचारी बन करके बेटा! जितेन्द्रीय बन करके अपने में मानो अवधान करता हुआ देखो! याग करे और वह देखो गऊ इत्यादियों

की ध्यानावस्था में परणित होता हुआ अपने में अपने को अपने में ही धारण करता हुआ ममत्व को प्राप्त होता हुआ बेटा! सागर से पार होने का प्रयास करे। तो आओ मेरे प्यारे! आज मैं देखो तुम्हें आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद की कुछ-कुछ चर्चाएँ प्रगट कर रहा था। **मानव को आध्यात्मिकवादी बन करके अपनी आत्मा का उत्थान करना चाहिए।** आत्मवेत्ता बन करके मेरे प्यारे! देखो राष्ट्र और समाज और मानवीयत्व देखो शिक्षा की प्रणाली पवित्र बना करती हैं। ये है बेटा! आज का वाक्। आज के वाक् उच्चारण करने का हमारा अभिप्रायः ये, क्या हम परमपिता परमात्मा का ध्यानावस्थित होकर के परमात्मा को सर्वज्ञ स्वीकार करते हुए वह कोई स्थली ऐसी स्वीकार न करे, जहाँ परमात्मा न हो। परमात्मा सदैव सर्वत्रता में विद्यमान रहता है। तो हम उस परमात्मा की महिमा को जानते हुए इस संसार से पार होने का प्रयास करें।

आओ मेरे प्यारे! आज का हमारा यह विचार क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते बेटा! इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। आओ मुनिवरो! देखो **अपने में अपनेपन को धारण करते हुए प्रभु के विज्ञान और उसकी मानो देखो विज्ञानमयी धारा को जानते हुए इस सागर से पार होने का प्रयास करें।** यह है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चाएँ कल प्रगट कर सकूँगा। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन।

ओ३म् देवाः आभ्याम् मनुगायनत्वाः आभ्याम् मनाः।

ओ३म् यश्शचाऽम प्राची रथम् मानम आपा रथम देवाः यम सर्वाऽम।।

दिनांक : 17 मार्च, 1992

स्थान : ग्राम लोहड्डा

॥ ओ३म् ॥

पवित्र अन्न से आत्म-साक्षात्कार तथा परमानन्द की प्राप्ति

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद-वाणी में उस परमपिता परमात्मा की आभा का प्रायः वर्णन किया जाता है। आज का हमारा प्रारम्भ का वेदमन्त्र हमें कुछ वार्ता प्रकट करा रहा था। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस ज्ञान का प्रतिपादन होता रहता है, जिस ज्ञान और विज्ञान का किसी काल में उसका वृद्धपन प्रायः नहीं आता। सदैव उसमें नवीनता बनी रहती है। क्योंकि वेदों का ज्ञान सदैव नवीनता में विचरण करता रहता है। उसमें किसी भी काल में वृद्धपन नहीं आता। वृद्धपन इसलिए नहीं आता कि वेदों का जो ज्ञान है अथवा विज्ञान है वह परमपिता परमात्मा की आभा है। मुनिवरो ! वृद्धपन उन वस्तुओं में आता है जो बनी हुई होती है। जिन वस्तुओं का निर्माण होता है और जिस वस्तु का निर्माण नहीं होता उसमें वृद्धपन भी कदापि नहीं आता। जैसे बेटा ! मानव के शरीर में वृद्धपन आता है, जरा आ जाता है परन्तु उस शरीर का निर्माण हुआ है, माता के गर्भस्थल में हुआ। पञ्चमहाभूतों के भौतिक परमाणुओं को मिलान कराने वाला वेत्ता कोई है। परन्तु उसमें बाल्यकाल आता है, वृद्धपन आता है। एक समय वह आता है कि उसका रूपान्तर हो जाता है। परिणाम यह कि सँसार में वेदों का जो ज्ञान है–जैसे परमपिता परमात्मा की प्रतिभा है, परमात्मा की जो व्यापकता है सदैव उसी रूप में बनी रहती है जैसे

आज से करोड़ों वर्ष पूर्व थी, जो अरबों वर्षों पूर्व थी। वह ऐसा ही बना रहता है क्योंकि वह **परमपिता परमात्मा सर्वज्ञ है, वह एक चेतना है।** उस चेतना का कदापि न तो निर्माण हुआ है और न होगा। वह सदा एक रस बना रहता है। उसमें वृद्धपन नहीं होता। जब उसमें वृद्धपन नहीं आता तो उसका जो ज्ञान है, विज्ञान है उसमें भी वृद्धपन नहीं आता, वह भी सदैव नवीन का नवीन ही बना रहता है। क्योंकि यह परमपिता परमात्मा की जो रचना है। परमपिता परमात्मा नवीनता में सदैव रमण करता रहता है, सदैव नवीन रहती है उसकी पवित्रता, विद्या। तो हमें उसका अनुकरण करना चाहिए। हमें उसके अनुकूल अपने जीवन को न्यौछावर करते हुए इस सँसार सागर से पार होना चाहिए।

पूज्यपाद गुरुदेव का सान्निध्य

आओ मेरे प्यारे ! आज मैं अधिक विवेचना इस सम्बन्ध में नहीं देने आया हूँ। आज मैं बेटा ! उन वाक्यों को प्रकट कराने आ पहुँचा हूँ जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा विराजमान होते थे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव क्या आहार करते थे? उनका क्या व्यवहार रहता था? अपने शिष्यगणों को किस प्रकार की विद्या का अध्ययन कराते थे? वे यौगिक प्रक्रिया में ले जाते थे। मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज प्रायः यह मानव अनुभव करता रहता है। मैंने अपने वत्स के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा था कि सँसार में मानव यौगिक क्षेत्र में जाने का प्रयास करता है। मुनिवरो ! **सबसे प्रथम उसके मन पर उसका अधिकार होना चाहिए।** मन क्या है? बेटा ! मन प्रकृति का एक सूक्ष्म तत्व है। मन प्रवृत्तियों का विभाजन करने वाला है। मुनिवरो ! वह जो मन है वह पृथ्वी में भी रहता है और भी नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों में और मानव के जीवन के साथ भी वह मनीराम बना रहता है। तो विचार यह है कि आज मन की प्रक्रिया को हमें जानना है और **"मन की जो प्रक्रिया होती है वह मनुष्यों के आहारों के ऊपर होती है।"** "जैसा आहार होता है, वैसी ही मन की प्रक्रिया होती है।" तो आज हमें इस अन्न को पवित्र बनाना है।

अन्न भी बेटा कई प्रकार का होता है। 1. स्थूल होता है। 2. सूक्ष्म होता है और 3. कारण भी अन्न माना गया है। **जैसे शरीर तीन प्रकार के होते हैं उसी प्रकार उसका अन्न भी तीन प्रकार का होता है।** तो आज मुनिवरो ! मैं तुम्हें यह वाक्य प्रकट कराने के लिए अधिक विवेचना में नहीं जाऊँगा। मैं इन वाक्यों को गम्भीरता में ले जाना नहीं चाहता हूँ। तो विचार यह कि यह तीन-तीन प्रकार की प्रक्रिया बना करती है अन्न के द्वारा। 'हमारे ऋषि-मुनियों ने, आचार्यों ने जिन्होंने बेटा ! यौगिक क्षेत्र में जाने का प्रयास किया, यौगिक क्षेत्र में जिन्होंने बहुत कुछ अनुसन्धान किया तो उन्होंने एक वाक्य कहा कि **''अन्न बहुत पवित्र होना चाहिए।''** अन्न पवित्र कैसे बनेगा? इस मन का निर्माण तो अन्न के द्वारा होता है तो अन्न को पवित्र बनाना है। मेरे प्यारे ऋषिवर ! **''यदि मानव को शरीर में विचरण करते हुए स्वतन्त्र रहना है तो मुनिवरो ! हमें उस अन्न का पान करना होगा जिस अन्न पर किसी का अधिकार नहीं होता।''** जब अधिकार नहीं होगा तो मुनिवरो ! यह मन भी स्वतन्त्र बन सकता है और जब हम किसी के अधिकार को लेना पसन्द करेंगे, आज हम किसी के आहार का पान करेंगे तो हमें उन प्राणियों के गुणगान गाना भी स्वाभाविक ही बन जाता है। बेटा ! तो मेरे प्यारे ! विचार यह कि **हमें उस अन्न का पान करना है जिस अन्न पर किसी का अधिकार नहीं होता।** क्योंकि तुम्हें बेटा ! महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज विद्यालय से विदा होकर पत्नियों से आज्ञा प्राप्त करते हुए जब भयंकर वन में पहुँचे तो उन्होंने शिलस्थ (सीला हिन्दी; शिल-संस्कृत, खेत में गिरे शेष अन्न के दानों को बीनकर निर्वाह करने की मुनिवृत्ति) अन्न को एकत्रित किया और उस अन्न का पान करते थे। क्योंकि उस अन्न से मन बनता था। क्योंकि उस अन्न पर किसी का अधिकार नहीं रहता था।

मेरे प्यारे ! वह समय मुझे स्मरण आ रहा है जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव चरणों में ओत-प्रोत कराते। **मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि आज मुझे उस अन्न का पान कराना है जिस अन्न में तुम्हारा**

मन स्वच्छ होगा। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मार्ग में (वन से) औषधियाँ एकत्रित करते रहते। नाना प्रकार की औषधियों को एकत्रित करके उसका पाक बनाकर उस अन्न का पान करते थे तो उस अन्न पर भी किसी मानव का अधिकार नहीं होता था। मुनिवरो ! इस प्रकार मन पवित्र बन जाता है और मन के पवित्र बन जाने से बुद्धि स्वच्छ बन जाती है। मुनिवरो ! देखो, बुद्धि में जो मेधा, ऋतम्भरा, प्रज्ञा वाली बुद्धि की जो तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं वे तरंगें स्वच्छ रूपों में दृष्टिपात करती रहती हैं। तो विचार-विनिमय यह कि सबसे प्रथम हमारा अन्न में जो दोष है उसे हमें दूर करना है, आज जो भी मानव योग को पान (योगाभ्यास) करना चाहता है।

मेरे प्यारे ऋषिवर ! तुम्हें स्मरण होगा कि योगीजन निद्रा पर विजय कर लेते हैं, निद्रा को जीत लेते हैं, विजयी बन जाते हैं, क्योंकि **निद्रा क्या है?** बेटा ! निद्रा वह वस्तु है मानो प्रकृति में जो जड़ता है उसका (निद्रा) जो शरीर है वह जड़ तत्त्वों से बना हुआ है। उसमें जड़ता का स्वभाव बना हुआ है। वह जो स्वभाव है जब तक हम उस जड़ता को नहीं जानेंगे, उस जड़ता की उपरामता तक नहीं पहुँचेंगे तब तक हम निद्रा को विजय नहीं कर सकते। बेटा ! **निद्रा उस काल में विजय होती है** जब हम जड़ता के कारण को जान लेते हैं। आलस्य और प्रमाद के स्वरूप को हम भिन्न-भिन्न रूपों में दृष्टिपात करने लगते हैं। वह जो प्रकृति में जड़ता बनी हुई है आज तुम्हें यह तो प्रतीत है कि **सबसे प्रथम प्रकृति आती है। उसके पश्चात् आत्मा।** क्योंकि हमारे यहाँ माना गया है तथा ऋषि-मुनियों का सिद्धान्त यह स्वीकार करता रहा है कि प्रकृति सत् और जीव आत्मा सत् चित्त (ज्ञानवान) है वह सत् और चित्त भी है इसी प्रकार ''चित्तं भ्रवे कृतः अवृद्धिः'' ऐसा ऋषिजन कहते हैं कि जो प्रकृति सत् में दृष्टिपात आ रही है आज जो यौगिक आत्मा इस प्रकृति के ऊपर विश्राम कर लेता है, प्रकृति से निरवयव बन जाता है। वह क्योंकि निद्रा का जो स्वरूप है वह केवल जड़ता में बना हुआ रहता है। चेतना में कदापि नहीं होता। चेतना तो एक रस बनी रहती

है। इसीलिए **आत्मा में चेतना है, प्रकृति में जड़ता है।** मुनिवरो ! जब जड़ता के स्वरूप को यह आत्मा जान लेता है तो आत्मा अपने स्वरूप चेतना को जान लेता है। तो मेरे प्यारे ! उसको निद्रा कदापि प्रभावित नहीं कर सकती। क्योंकि प्रकृति के कारण को जान लिया है। उस मार्ग से हो करके जब प्रकृति के स्वरूप को नहीं जानता तो प्रकृति की उसे स्मरण शक्ति भी अर्न्तध्यान होने लगती है। वह जो प्रकृति की स्मरण शक्ति है उसकी जिसके कारण जो रचना होती है वह रचना भी गर्भ में लुप्त हो जाती है परन्तु उसकी स्मरण शक्ति तो हो जाती है। **आत्मा का ज्ञान और प्रयत्न उसका स्वभाव बना रहता है।** उसके कारण मुनिवरो ! वह प्रक्रिया बनी रहती है। इसीलिए आज मैं उस यौगिक क्षेत्र में अधिक जाना नहीं चाहता हूँ। विचार-विनिमय यह कि यौगिक आत्मा निद्रा को विजय कर लेते हैं। मुझे स्मरण है एक समय बेटा ! महर्षि दालभ्य मुनि महाराज ने 84 वर्ष तक निद्रा का आहार नहीं किया। महर्षि व्यास मुनि ने लगभग 101 वर्ष तक निद्रा का आहार नहीं किया क्योंकि वह वेदान्त में बहुत पारायण थे। उसी प्रकार मुनिवरो ! महर्षि पतञ्जलि मुनि महाराज ने भी लगभग 85 वर्ष तक निद्रा पर विजय पाने का प्रयास किया।

विचारणीय यह है मुनिवरो ! कि **योग है क्या?** योग उसे कहा जाता है जो मानव धर्म के दस लक्षणों पर अपना आधिपत्य कर लेता है। उसके ऊपर अनुसरण करता हुआ अपने जीवन को ओ३म् रूपी धागे में, उसे सूत्र में पिरो देता है जो कि चेतना है। **जड़ता को त्याग करके मुनिवरो ! वह चेतना का अनुभव करता है।** तो मुनिवरो ! देखो वह योगी निद्रा विजयी बन जाता है, वह राकेश (गुडाकेश) बन जाता है। तो विचार-विनिमय यह कि आज हम योग के मार्ग को प्राप्त करना चाहते हैं। मेरे प्यारे ऋषिवर ! सबसे प्रथम अन्न की पवित्रता होनी चाहिए। अब यह जो स्थूल अन्न है नाना प्रकार की वनस्पतियों का अन्न इसी **मानव शरीर में इस स्थूल अन्न को भी मानव त्याग देता है वह केवल वायु के, अग्नि के तत्त्वों में जो अन्न इत्यादि रमण कर रहा**

है परमाणु रूप से, उन परमाणुओं को वह अपने में ग्रहण कर लेता है क्योंकि उसको केवल उसकी अनुभूति होने लगती है। जब प्रतीति होने लगती है तो उसको वह अपने में ग्रहण करने लगता है। जब ग्रहण करता है तो मुनिवरो ! उसी से वह तृप्त रहता है। अहा ! देखो नाना प्रकार के फल हैं वृक्षों के, परन्तु उनमें जो पोषक तत्त्व होता है योगी जन जब मन के ऊपर संयम कर लेता है। **बुद्धि और मन का दोनों का समन्वय होने पर उसका आहार भी सूक्ष्म बन जाता है।** कैसा आहार बन जाता है? वह उन फलों के रसों का स्वादन करता है। **सँकल्प मात्र से वह तृप्त होने लगता है।** मेरे प्यारे मुनिवरो ! मुझे स्मरण है जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यहाँ नाना प्रकार के पञ्चांगों को पान कराया क्योंकि योगी ऐसे वैसे नहीं बनता।

यहाँ कोई यह विचार करने लगे इस सँसार में जैसा मुझे महानन्द जी ने प्रकट कराया कि सँसार में दूसरों के आधिपत्य को एकत्रित करने वाला, द्रव्य पान करने वाला, **योगी** बन जाए तो बेटा यह असम्भव है। मेरे प्यारे ! योगी तो उस काल में बनता है जब वह अपने अधिकार को अपने में ग्रहण करने लगता है। अपना अधिकार भी क्या है? मुनिवरो ! देखो, जो नाना प्रकार के वृक्ष हैं, इन वृक्षों का जो रसास्वाद है उसको पान करने की प्रक्रिया बनी रहती है परन्तु **सबसे प्रथम रसना आदि इन्द्रियों को विजय करना है।** मेरे प्यारे ! **जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा विराजमान होते तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने सबसे प्रथम (1) 'जाल' का पञ्चांग बनाया।** 'जाल' एक वृक्ष होता है जब उसका पञ्चांग बनाया, सबसे प्रथम उसका पान किया तो गुरुदेव से कहा भगवन् ! यह तो सुन्दर प्रतीत नहीं होता। उस समय पूज्यपाद गुरुदेव मौन हो गए उन्होंने कोई वाक्य अथवा उत्तर हमें नहीं दिया। न देने का परिणाम यह हुआ कि हम भी मौन हो गए। परन्तु मौन हो जाने के पश्चात् उसी **जाल के पञ्चांग को लगभग एक वर्ष तक पान करते रहे।** पान करने के पश्चात् इस प्रकृति पर उसका परिणाम यह हुआ कि यह जो नाना प्रकार की काम करने की वासना

थी मानो जो मन चंचल रहता था, मन चलायमान रहता था तो मुनिवरो ! उस मन में स्थिरता आ गई, बुद्धि में स्थिरता आ गई। मन में जब स्थिरता आ गई, मुनिवरो देखो ! जब मन अकृत (साँसारिक कामनाओं से रहित) बन गया उसके पश्चात् मुनिवरो ! एक प्रभु का चिन्तन रह गया। प्रभु को अपने में स्वीकार करने लगे। (2) मुनिवरो ! **उन्होंने लगभग एक वर्ष तक 'पीपल' के पञ्चांग का, (3) एक वर्ष तक 'बट' के पञ्चांग को, (4) एक वर्ष तक 'बेल' के पञ्चांग को, (5) एक वर्ष तक 'स्वाति' एक वृक्ष होता है उसके पञ्चांग को, (6) एक वर्ष तक 'सुषा' के पञ्चांग को, इस प्रकार लगभग 12 वर्ष तक, बारह वृक्षों के पञ्चांगों को पान कराने के पश्चात् मन में पूर्ण स्थिरता आ गई।** स्थिरता आ जाने का परिणाम यह हुआ कि जीवन क्रियात्मक बन गया। जीवन में तपस्या का पूर्णतम बल आ गया। परिणाम यह हुआ मुनिवरो ! **आत्मा बलवान बन गया।** बलवान बन जाने के कारण ये जो नाना प्रकार के परमाणु वायु मण्डल में भ्रमण करते हैं तो मुनिवरो ! देखो उस समय बुद्धि मेधावी बन गई। मेधावी के स्थान में **जब बुद्धि पूर्णतया मेधावी बन गई, तो मेधावी क्षेत्र में यह हुआ** कि यह जो नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों में जाना, यातायात का होना, प्रकृति के सूक्ष्म स्वरूप को जानना जो करोड़ों जन्मों के सँस्कार हमारे चित्त में विराजमान होते हैं, बेटा ! वे जो चित्त के सँस्कार थे उनमें उद्बुद्धता (जागृति) आने लगी। उनमें जब उद्बुद्धता आने लगी तो वे जो विज्ञान के संस्कार थे, वह ऊर्ध्वगति को आने लगे, तो बेटा ! नाना प्रकार के यन्त्रों में गति आने लगी। यन्त्र का निर्माण कैसे होता है? क्योंकि **"बुद्धि और मेधावी क्षेत्र तक ही प्रकृति का विज्ञान रहता है।"** प्रकृति की धारा रहती है, प्रकृति का स्वरूप साक्षात्कार हो जाता है। चन्द्रमा में कैसे जाना है? मुनिवरो ! चन्द्रमा की किरणों के साथ में योगी कैसे ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता है? चन्द्रमा की कान्ति में कैसे योगी रमण करता है? "इस प्रकार की गति और उनमें नाना प्रकार के परमाणुओं का यौगिक मिलान, नाना प्रकार के यन्त्र,

वरुणास्त्र, आग्नेय-अस्त्र, स्वाति आदि नाना प्रकार के अस्त्रों-शस्त्रों का निर्माण उनकी प्रक्रिया उस योगी को साक्षात्कार हो जाती है।" बेटा ! परिणाम यह कि यह जो मानव कहीं चन्द्रमा की उड़ान उड़ता है, कहीं सूर्य की उड़ान उड़ने लगता है, कहीं यहाँ मङ्गल की उड़ान उड़ने लगता है, प्रत्येक लोक-लोकान्तरों की प्रतीति होने लगती है। कितने लोक स्थूल रूप में हैं जिनमें पार्थिव तत्त्व हैं? कितने लोक हैं जो आग्नेय तत्त्व प्रधान हैं? कितने लोक हैं जो जल तत्त्व प्रधान हैं? कितने लोक हैं जो वायु तत्त्व प्रधान है? ये पञ्च-महाभौतिक जो परमाणु हैं इन्हीं के अन्तर्गत सारा प्रकृतिवाद, सारा प्रपञ्च जो हमें दृष्टिपात आने लगता है। बेटा ! वह स्पष्टीकरण तो अच्छी प्रकार नहीं किया जाता पूर्णता से, परन्तु उसका स्वरूप मानव के समीप आ जाता है।

मेरे प्यारे ऋषिवर ! विचार-विनिमय यह कि आज जब बुद्धि का मेधावी क्षेत्र समाप्त हो जाता है, उसके पश्चात् और भी महान् तपस्या में जब परणित होते हैं तो मुनिवरो ! ऋतम्भरा आती है, **ऋतम्भरा उस दिशा को कहते हैं** जब मुनिवरो ! योगी इस प्रकृति के ऊपर अपना आधिपत्य कर लेता है। इसके ऊपर विश्राम करने लगता है। मुनिवरो ! ऋतम्भरा और मेधा और प्रज्ञा बुद्धि, ऋतम्भरा के पश्चात् प्रज्ञा में चला जाता है, प्रज्ञा इसे कहते हैं। बेटा ! जहाँ एक ब्रह्म ही दृष्टिपात आता है, जो प्रपञ्च था जो मन की चेतना अथवा मन की जो आकृति थी, वह प्रकृति में रमण कर रही थी। मुनिवरो ! देखो ऋतम्भरा में जाते ही मन की जो प्रक्रिया थी, जो विभाजनवाद हो रहा था वह प्रकृति में रमण करने लगा, वह प्रकृति के गर्भ में परणित होने लगा। **जब ऋतम्भरा को त्याग करके प्रज्ञा के क्षेत्र में जाता है** उस समय स्थूल का सम्बन्ध, सूक्ष्म का सम्बन्ध दोनों सम्बन्धों का विच्छेद हो करके केवल मुनिवरो ! एक लिंगमय रह जाता है जिसको कारण कहा जाता है। कारण में जाने के पश्चात् मन का जब सम्बन्ध नहीं रहता तो प्रकृति के तत्त्वों की स्मरण शक्ति भी नहीं रहती, उसका भी विच्छेद हो जाता है। तो परिणाम यह कि आज हम मुनिवरो ! उस क्षेत्र में, उस उड़ान को उड़ने वाले बनें

जिस उड़ान से मानव महान् और पवित्र बन सकता है। योगी कहते किसे हैं? **योगी उसी को कहा जाता है** जिसकी उड़ान प्रभु के समीप जाने की हो। वह समीप में विराजमान हो जाए। योगी ही मुनिवरो ! प्रभु के समीप जा सकता है। यह जो सँसार का प्राणिमात्र है, यह जो नाना प्रकार के ''अस्वतों'' (साँसारिक कामनाओं) में एक-दूसरे के वाद और विवाद में रमण करता रहता है, योग का उनसे सम्बन्ध नहीं होता। **योग तो निर्विवाद है, वह निर्द्वन्द्व है, वह स्वतन्त्र है।** आज हमें उस स्वतन्त्रता पर विचार-विनिमय करना चाहिए। जिसके ऊपर वास्तव में हमारा अधिकार हो क्योंकि हमारा तो अधिकार प्रभु में रहना चाहिए। ऐसी परिस्थिति को बेटा ! योग कहा जाता है, **उसी को योगी कहते हैं।** परिणाम यह कि संसार में जो मानव का जन्म होता है केवल योगी बनने के लिए प्रभु ने उसको जन्म दिया है। यहाँ सँसार की नाना प्रकार की वासना के लिए यह जीवन नहीं होता। **यह जो मानव जीवन है यह प्राणों का मिलान करने के लिए, प्रवृत्तियों का निरोध करने के लिए होता है और प्रवृत्तियों का मुनिवरो ! निरोध उस काल में होता है जब हमारा अन्न पवित्र होगा, आहार पवित्र होगा।** इन आहारों के पवित्र होने पर ही हमारा योग सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं होगा। क्योंकि हम प्रत्येक इन्द्रिय के विषय को साकल्य बनाना चाहते हैं। परन्तु वह साकल्य उसी रूप, उसी काल में बन सकता है जबकि हमारा जो अन्न का स्रोत है वह पवित्र होगा।

मेरे प्यारे ऋषिवर ! मानव का, अन्न का स्रोत क्या है? साकल्य को एकत्रित करने के लिए हमारा आहार है उस आहार के ऊपर हमारा क्रियात्मक जीवन होना चाहिए। हमारे ऋषि-मुनियों ने बहुत ही प्रयत्न किया। मुनिवरो ! **सबसे प्रथम मानव आहार से मन की प्रवृत्तियों पर चित्त में निर्भय हो जाना चाहिए।** निर्भय कौन होता है? जिसका अन्न का आहार पवित्र होगा, जिसका आहार भयाक्रान्त होगा वह मानव कदापि भी निर्भय नहीं बन सकता सँसार में। मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे किसी काल में प्रकट कराते रहते हैं वह क्या? कि जो मानव भय से

पूर्ण अन्न का आहार करेगा, दूसरे के रक्त को पान करने वाला प्राणी होगा, वह योग की वार्ता को प्रकट करे तो वह व्यर्थ की वार्ता प्रकट कर रहा है। विचार यह कि वह योग के अंगों को नहीं जानता।

सबसे प्रथम मानव को अहिंसावादी बनना है। क्योंकि अहिंसावादी बनने का परिणाम यह होता है कि हमें संसार में किसी प्राणी का भय न रहे। अहिंसावादी वही प्राणी होता है जो आहार को स्वच्छ पवित्र पान करेगा। जिस पर किसी का अधिकार न होगा। मुनिवरो ! देखो, वह समय मुझे स्मरण है कि एक समय जब भगवान् मनु के वंश में ''स्वताम्'' नाम के राजा हुए थे। वे राजा-यौगिक प्रक्रिया वाले थे। परन्तु वे राजा तो इसलिए बने कि उनके वंश की परम्परा थी। अहा ! उस परम्परा को लाने के लिए, समाज को ऊँची शिक्षा देने के लिए वे राजा बने। परन्तु विचार यह हुआ कि आज हमारे क्या-क्या पदार्थ निर्णीत होने चाहिएँ? तो राजा ने यह नियम बनाया। हमारे पूर्वज मनु जी हुए थे। ये 3500 पीढ़ी में उत्पन्न हुए थे, उन्होंने यह नियम बनाया कि वर्ण-व्यवस्था ऊँची होनी चाहिए, आश्रम ऊँचे होने चाहिएँ जो हमारे पूर्वजों ने निर्णीत किए हैं। उसी के आधार पर उन्होंने निर्णय दिया, ''मेरे राष्ट्र में किसी भी प्राणी का हनन नहीं होना चाहिए, चाहे वह जलों में रहने वाला हो, चाहे पृथ्वी पर विचरण करने वाला हो। मेरा राष्ट्र सात्विक रहना चाहिए।'' उस समय राजा के नियमों का पालन करने के लिए प्रजा तत्पर हो गई। क्योंकि ब्राह्मणों का समय था, वे ब्राह्मण कैसे थे? वे 'अहिंसा परमोधर्मी' थे। उनके आचार्य पुरोहित इत्यादि इसी प्रकार के थे। राजा के यहाँ नियम बन गया। उससे पूर्व भी इसी प्रकार का नियम था।

परन्तु उन्होंने और भी निर्धारित कर दिया। गऊ इत्यादियों को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता था, जल में विचरण करने वाला प्राणी भी। जितना भी प्राणिमात्र है सँसार का इस प्राणिमात्र का एक-दूसरे प्राणी से बड़ी सहकारिता (सम्बन्ध) है, बड़ा एक नियमबद्ध रहता है।

जैसे नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर हैं प्रभु के राष्ट्र में परन्तु प्रत्येक लोक-लोकान्तरों से वास्तव में किसी न किसी रूप में एक-दूसरे की सहकारिता (सम्बन्ध) से कटिबद्ध रहता है। एक-दूसरे की प्रक्रिया में प्रत्येक लोक-लोकान्तर रमण करता रहता है। प्रभु के राष्ट्र में, मंडल में कितने लोक-लोकान्तर हैं परन्तु एक दूसरा लोक-लोकान्तर एक-दूसरे का सहायक बना हुआ है। इसी प्रकार **पृथ्वी पर जितना भी प्राणिमात्र है वह एक-दूसरे के जीवन से कटिबद्ध रहता है।** इसीलिए उसका हनन करना, एक-दूसरे प्राणी को कोई अधिकार नहीं होता। अधिकार इसलिए भी नहीं होता जब प्राणी एक-दूसरे प्राणी को जीवन नहीं दे सकता उनसे लाभप्रद बन सकता है परन्तु जीवन नहीं दे सकता। जब जीवन नहीं दे सकता तो हनन करने का भी उसको अधिकार नहीं होता। अतः राजा ने यह नियम बनाया **''जब हम किसी को प्राण नहीं दे सकते तो किसी के प्राणों का हनन करना हमारा अधिकार नहीं होता।''** जब राजा ने यह नियम बनाया तो प्रजा ने उसको स्वीकार कर लिया। प्रजा ने यह नियम बना लिया (1) ''किसी प्रकार का अधिकार राजा के राष्ट्र में नहीं होना चाहिए।'' (2) ''संग्रह करने वाले वैश्य नहीं होने चाहिएँ।'' राजा ने यह घोषणायुक्त कहा, ''हे प्रजाओ ! मैं जो तुम्हारा राजा बना हुआ हूँ, मैं भी अनाधिकार चेष्टा कर रहा हूँ। क्योंकि मुझे भी कोई अधिकार नहीं है तुम पर शासन करने का। मैं भी मनुष्य हूँ, तुम भी मानव हो। परन्तु सब प्रभु के पुत्र हैं, प्रभु की आत्मा हैं। आज हमें एक-दूसरे पर भी शासन करने का अधिकार नहीं। ''यह अधिकार, यह शासन उसी काल में होता है जब प्रजा में अनियमितता आ जाती है अपने कर्त्तव्यवाद और अपनी ''अहिंसा परमोधर्मः'' की परम्परा को हम त्याग देते हैं। तो शासक की आवश्यकता बन ही जाती है सँसार में।'' तो राजा ने जब यह घोषणा की तो प्रजा ऐसी हो गई जैसे देवता होती है। **मेरे पूज्यपाद गुरुदेव उस काल की वार्ता प्रकट कराते रहते थे।** मुनिवरो ! देखो वह साहित्य स्मरण आता है।

साहित्यों में भी हम श्रवण करते रहे हैं कि कोई भी मानव स्वतन्त्र हो करके विचरण करने वाला जब समाज में होता है तो बेटा ! वह प्रभु का साम्राज्य है, वह प्रभु का राष्ट्र है। इसी प्रकार मुनिवरो ! जो ''अहिंसा परमोधर्मः'' का पालन करता है। मुझे स्मरण है जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा विराजमान होते थे तो मृगराज उनके चरणों को छूते रहते थे। जब मृगराज उनके चरणों को छूते तो हम भी कहा करते कि प्रभो ! यह तो मानव का भक्षण कर जाते हैं। उन्होंने कहा, वत्स ! हमारे जो विचार हैं, मानव का जो विचार है ''अहिंसा परमोधर्मः'' है ऐसा आहार, ऐसा विचार जब ऊँचा बन जाता है तो हिंसक प्राणी भी अपनी हिंसा को त्याग करके अहिंसा परमोधर्मः'' का पालन करके वह भी चरणों में ओत-प्रोत हो जाते हैं।

मन का शोधन

तो परिणाम यह कि यह विचार अन्न से उत्पन्न होता है। **सात्विक अन्न से मन का शोधन किया जाता है।** सबसे प्रथम मानव को, अन्न को ऊँचा बनाना है। मेरे प्यारे ऋषिवर ! मुझे स्मरण आता रहता है कि आज तुम्हें यह प्रतीत होगा मैंने कई कालों में यह वाक्य प्रकट किया कि भगवान् राम जब माता के गर्भस्थल में थे तो माता का विचार यह रहता था कि 'यह जो रघुवंश समाप्त हुआ है यह आलस्य और प्रमाद में हुआ है।'' इसलिए मुझे उस अन्न का पान करना है जिस पर किसी का कोई अधिकार न हो। तो माता कौशल्या स्वयं कला-कौशल करती थीं और स्वयं कला-कौशल करके उसके बदले जो अन्न आता उसका पान करतीं। जब राजा ने कहा, देवि ! यह तुम क्या कर रही हो? उन्होंने कहा, मैं अपने गर्भाशय को पतित करना नहीं चाहती, मैं केवल अपने गर्भाशय को ऊँचा बनाना चाहती हूँ। क्योंकि मेरे गर्भस्थल से एक महान् ब्रह्मचारी और योगी बालक का जन्म होना चाहिए। मेरे प्यारे ! **मुझे स्मरण है भगवान् राम का जीवन, इनके द्वारा राष्ट्र की कोई वस्तु आनन्ददाता नहीं और**

वन जाने का कोई शोक नहीं। अरे ! उनके द्वारा योग आएगा अथवा योग मानव का भक्षण करने वालों के द्वारा आएगा। मेरे प्यारे ! आज मैं इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना देना नहीं चाहता हूँ। विचार-विनिमय यह कि आज हम उस अन्न को पान करने वाले बनें। **"योग का जो प्रारम्भ होता है वह आहार से सम्बन्धित है। अतः आहार और मन दोनों का समन्वय कर देना चाहिए।"** मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज मैं अधिक विवेचना तो देने नहीं आया हूँ।

मन और बुद्धि का समन्वय

विचार-विनिमय केवल यह है कि आज हम अपने जीवन को यौगिक बनाना चाहते हैं, योग के आनन्द में ले जाना चाहते हैं। मेरे प्यारे ऋषिवर ! मानव को गुडाकेश बनना है। निद्रा पर विजय प्राप्त करना है। परन्तु वह उस काल में बनती है जबकि हमारा जीवन ऊर्ध्वगति को प्राप्त होगा जब कि हमारा अन्न का आहार पवित्र होगा। मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज हम उस वाक्य को प्रकट करने आए हैं जहाँ हम अपने जीवन को ऊँचा बनाना चाहते हैं। उस स्वतन्त्रता में रमण करना चाहते हैं जहाँ हमारे ऊपर किसी का साम्राज्य नहीं होना चाहिए। वह कौन सी गति है? वह गति है, **"हमारा जब आहार पवित्र बन जाएगा तो हमारे चित्त की प्रक्रिया ऊँची बनेगी।"** चित्त के आँगन में, चित्त के सँस्कारों का जो समूह है उन सँस्कारों के आँगन में यह आत्मा विराजमान हो जाता है। यह आत्मा सन्निधानमात्र से चित्त को क्रिया दे रहा है। शून्य (जड़) को चेतन बना रहा है और अपनी प्रक्रिया देकर सन्निधानमात्र से ही मेरे प्यारे ऋषिवर ! वह सन्निधान केवल सँस्कारों में ऐसे कटिबद्ध हो गया है, स्वतः ही उसका स्वभाव बन गया है कि उसको चेतना देने का स्वभाव बन गया है। परन्तु **जब हम मन के अन्न के, दोषों को समाप्त करेंगे, उसके पश्चात् मन और बुद्धि दोनों का समन्वय हो जाएगा।**

यहाँ वास्तव में यह कहा जाता है कि मन और प्राण दोनों का समन्वय करना योग कहलाया गया है। क्योंकि **प्राण के विभाग होते**

हैं, मन का विभाजन नहीं होता। मन तो केवल किसी वस्तु का विभाजन करता है। प्राण का विभाजन करता है। सँसार में जितना भी विभाजन है, जितना भी जल प्रवाह रमण कर रहा है यह सब प्राण ही है और प्राणों का विभाजन करने वाला यह मन है। आज इस मन को जानना और मन को जान करके अन्न के दोषों को समाप्त करके मन और प्राण दोनों को सहकारिता में रमण करा देना, दोनों का मिलान करा देना। जब दोनों का मिलान हो जाता है मुनिवरो ! **मन और प्राण दोनों का मिलान हो जाना ही इस शरीर में आनन्द को प्राप्त करना है।** मन और प्राण की प्रक्रिया से मानव को अभ्यास हो जाता है। निद्राविहीन जीवन में रमण करने लगता है। मुनिवरो ! उस समय मानव को निद्रा की भी आवश्यकता नहीं रहती। क्योंकि मन और प्राण दोनों का मिलान हुआ और वे जो प्रकृति के आवेश तुम्हारे द्वारा थे, उनका विकार समाप्त हो जाता है। वह जो विभाजनता थी जब विभाजन ही नहीं रहेगा तो मुनिवरो ! देखो तो संसार का प्रमाद भी हमारे द्वारा नहीं आएगा।

प्रमाद तो आता उस काल में है जब हमारी प्रवृत्तियों का विभाजन हो जाता है। उनका विभाजन नहीं होना चाहिए। विभाजन होता है मन और प्राण दोनों के विभाजन होने से ही इन प्रवृत्तियों का भी विभाजन हो जाता है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज हमें मन और प्राण दोनों का मिलान करना है, दोनों को एक सूत्र में लाना है। दोनों मनके हैं उस चेतना के, दोनों मनकों को ओ३म् रूपी धागे में परणित कर देना है बेटा ! मेरे प्यारे ऋषिवर ! जब ये परणित हो जाते हैं दोनों एकसूत्र में पिरोये जाते हैं तो चित्त में जो नाना जन्म-जन्मातरों के सँस्कार हैं इनको भयंकर अग्नि से उन सँस्कारों का भी कुछ न कुछ परिवर्तित हो जाता है। वास्तव में यह कहना चाहिए, यह उच्चारण करना चाहिए कि वे जो सँस्कार हैं उनमें हल्कापन (कोमलता) आ जाती है उनमें ऊर्ध्वगति आ जाती है। ध्रुव (नीचगति) नहीं रहती। ऊर्ध्वगति आ करके मुनिवरो ! जब प्राण और मन दोनों की भयंकर

अग्नि और भी प्रदीप्त होती है, केवल चित्त में जो सँस्कार हैं और भी सूक्ष्म बनते हैं और अग्नि परणित की जाती है तो और भी सूक्ष्म बनते हैं। परिणाम यह मुनिवरो ! सूक्ष्म से सूक्ष्म बन करके कारण में चले जाते हैं और कारण में जा करके एक समय वह आता है जब यह आत्मा निर्द्वन्द्व हो करके प्रभु के आनन्द में विचरण करने लगता है। वह कर्म प्रकृति के आँगन में रमण कर जाते हैं। आत्मा के समीप नहीं रह पाते।

आत्मा की स्वतन्त्रता

परिणाम यह कि आज हम केवल आत्मा को दृष्टिपात करना चाहते हैं। इस आत्मा से ही परमात्मा के आनन्द को प्राप्त करना चाहते हैं। बेटा ! आज हमें परमात्मा को प्राप्त करने वाले सर्वत्र की एक ही नियमावली होनी चाहिए कि **सबसे प्रथम ''अन्न प्रवाह अस्वाति''** दोषों में नहीं रमण करना चाहिए। आज मैं बेटा ! यह उच्चारण करने नहीं आया हूँ कि सँसार में केवल हम 'आत्मवत आभ्रवहे'' मुनिवरो ! मैं तो केवल यह उच्चारण करने आया **हूँ सँसार में मानव का जो जन्म होता है वह प्रभु को प्राप्त करने के लिए, आत्मा को स्वतन्त्र बनाने के लिए प्राप्त होता है।** इसीलिए मानव बनना चाहिए। वह मानव पृथ्वीमंडल का हो, सूर्यमंडल का हो, मङ्गल का हो, बृहस्पति का हो, शनि का हो और बुध का हो चाहे वह और भी नाना जेठाय नक्षत्र और ध्रुवमण्डल का ही प्राणी क्यों न हो। परन्तु **प्राणी जब भी आता है किसी भी लोक में विचरण करने वाला हो केवल एक आत्मा को स्वतन्त्र बनाने के लिए उसका जन्म होता है। कर्म करने के लिए उत्पन्न होता है।**

जितना भी अन्न आदि को तुम दूषित बनाते रहोगे उतना प्रकृति के आँगन में रमण करते रहोगे और भी नाना प्रकार की योनियाँ अशुद्ध से अशुद्ध प्राप्त होती रहेंगी। **जितना अन्न के दोषों**

को दूर करते रहोगे, शुद्ध, पवित्र बनाते रहोगे उतना आत्म साक्षात्कार के योग्य बनोगे।

मुनिवरो ! आहार केवल अन्न ही नहीं होता, स्थूल अन्न एक अन्न जो वायुमण्डल में विचरण करता है वह भी अन्न होता है। परमाणुओं से मानव का शरीर बना है परमाणु इसका आहार है। मुनिवरो ! वह परमाणु वायु से भी योगी अपने में ग्रहण कर लेता है, जल में से भी ग्रहण कर लेता है, आन्तरिक्ष में रमण करने वाले परमाणुओं को द्युलोक से भी प्राप्त कर लेता है। मुनिवरो ! उससे भी शरीर की तृप्ति हो करके एक समय वह आता है कि स्थूल शरीर भी त्याग दिया जाता है। सूक्ष्म रह जाता है। सूक्ष्म का भी विच्छेद हो जाता है। कारण रह जाता है, कारण का सम्बन्ध उस महान् मेरे प्यारे प्रभु से होता है। प्रभु के गर्भ में वह कारण लिंग भी 'अस्वातो' में रह जाता है परन्तु वह उसके आँगन में विचरण करने लगता है।

यह है बेटा ! आज का वाक्य अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा। **आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमारा जीवन उस काल में ऊँचा बनेगा जब अन्न का दोष नहीं रहेगा।** बेटा ! यह आज का वाक्य अब हमारा समाप्त हो गया है। कल मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाओं में इसके ऊपर विचार किया जाएगा। आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

धन्य हो.....

अच्छा भगवन् !

दिनांक : 11 नवम्बर, 1972
समय : रात्रि 9 बजे
स्थान : भक्ति साधना आश्रम, रोहतक

यौगिक प्रवचन माला भाग-9

॥ ओ३म् ॥

श्रद्धा-सुमन

स्व. श्रीमति मन्नो देवी

आदरणीय श्री कन्हैयालाल त्यागी जी निवासी सरधना जिला मेरठ, उ.प्र. की माता जी, श्रीमति मन्नोदेवी धर्मपत्नि स्व. श्री वासुदेव त्यागी जी, ने 95 वर्ष की आयु में अपने नश्वर शरीर को दिनाँक 8 अप्रैल, 2014 को त्यागकर अमरावती को गमन किया। वह जीवनपर्यन्त ईश्वर की भक्ति में संलग्न रहीं और पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज के सानिध्य में आने के पश्चात् याग के कार्यक्रम में भी संलग्न हो गईं। उसी परम्परा को जीवन में अपनाने हुए अपने परिवार को उसी में निरन्तर ऊर्ध्वा में ले जाने के लिये प्रयत्नशील रहीं। जिसके फलस्वरूप उनकी सुपौत्री ऋचा पूज्यपाद गुरुदेव के साहित्य का अध्ययन करते हुए अपने जीवन को एक गुरुकुल में अध्यापिका के रूप में व्यतीत करते हुए वैदिक परम्परा का तन-मन-धन से विकास कर रही है और श्री कन्हैया लाल जी लाक्षागृह बरनावा में आश्रम के कार्यों को साकार रूप देने में निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं।

त्यागी जी के परिवार ने पूज्य माता जी की स्मृति में 1100 रुपये का सहयोग समिति के प्रकाशन के कार्य के लिये प्रदान किया है जिसका समिति हृदय से आभार प्रकट करती है और शोकयुक्त परिवार को कष्ट सहन करने की शक्ति प्रदान करने के लिये परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करती है।

वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जी.)

॥ ओ३म् ॥

जन्मदिन की शुभकामनाएँ

वैदिक कुमार

श्रीमति पूनम त्यागी व श्री संजीव त्यागी जी निवास स्थान बल्लभगढ़, हरियाणा ने अपने सुपुत्र चिरंजीव वैदिक कुमार के शुभ जन्मदिन के उपलक्ष्य में 5100 रु. का सात्विक दान समिति को प्रकाशन के कार्य के लिए प्रदान किया है। श्री त्यागी जी समिति के कार्यों में निरंतर तन-मन-धन से काफी लम्बे समय से सहयोग करते आ रहे हैं और इस सब के साथ मासिक 500 रु. का सहयोग भी शुरू से उदारता के साथ प्रदान कर रहे हैं। अर्थात् पूज्यपाद गुरुदेव के सभी कार्यों को ऊर्ध्वगति प्रदान करने में अपना योगदान बड़ी कर्मठता से बनाये हुए हैं।

श्री संजीव त्यागी जी मूल रूप में ग्राम दिनकरपुर, जिला-मुजफ्फरनगर के निवासी हैं और पूज्यपाद गुरुदेव से जुड़ने का सौभाग्य बचपन से ही प्राप्त हो गया था क्योंकि इनके माता-पिता स्व. श्रीमती विशम्बरी देवी व श्री बेगराज त्यागी जी गुरुदेव के अनन्य भक्त थे। माता-पिता की छत्रछाया में और पूज्यपाद गुरुदेव के आशीर्वाद से त्यागी जी अपनी शिक्षा के साथ-साथ अपने जीवन को यौगिक क्षेत्र में भी उन्नति की तरफ ले जाते रहे। आज-कल आप फरीदाबाद में कार्यरत हैं और इसके साथ-साथ पूज्यपाद गुरुदेव के अमूल्य साहित्य का अध्ययन करते हुए उस साहित्य को जन-साधारण तक पहुँचाने में संलग्न रहते हुए अपने व अपने परिवार के जीवन को ऊर्ध्वागति में ले जाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं।

समिति उनके निरन्तर सहयोग के लिए उनका व उनके परिवार का हृदय से आभार प्रकट करती है और परिवार सहित सुख, शान्ति व सर्वतोन्मुखी के साथ-साथ सुपुत्र के उज्ज्वल भविष्य के लिये ईश्वर से प्रार्थना करती है।

वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जी.)

योगनिष्ठ पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (शृङ्गी ऋषि जी) की अमृतवाणी संहिता के रूप में

1.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 1)	80.00
2.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 2)	50.00
3.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 3)	50.00
4.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 4)	50.00
5.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 5)	50.00
6.	Yogic Wisdom of Ancient Rishis	50.00
7.	वेद पारायण-यज्ञ का विधि विधान	25.00
8.	आत्म-लोक	35.00
9.	धर्म का मर्म	30.00
10.	शंका-निवारण	30.00
11.	यज्ञ-प्रसाद अर्थात् यज्ञ का महत्व	40.00
12.	आत्मा व योग-साधना	35.00
13.	देवपूजा	20.00
14.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 1)	110.00
15.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 2)	110.00
16.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 3)	100.00
17.	रामायण के रहस्य	35.00
18.	यज्ञ एवं औषधि विज्ञान	40.00
19.	महाभारत के रहस्य	25.00
20.	अलङ्कार-व्याख्या	35.00
21.	रावण-इतिहास	40.00
22.	महाराजा-रघु का याग	25.00
23.	वनस्पति से दीर्घ-आयु	25.00
24.	मोक्ष प्राप्ति का मार्ग	30.00
25.	चित्त की वृत्तियों का निरोध	25.00
26.	आत्मा, प्राण और योग	35.00
27.	पञ्च-महायज्ञ	30.00
28.	अश्वमेघ-याग और चन्द्रसूक्त	30.00
29.	याग-मन्जूषा	25.00
30.	आत्म-दर्शन	25.00
31.	पुत्रेष्टि-याग और मातृ-दर्शन	25.00
32.	याग और तपस्या	45.00
33.	यागमयी-साधना	35.00
34.	यागमयी-सृष्टि	25.00
35.	याग-चयन	25.00
36.	दिव्य-रामकथा	110.00
37.	ज्ञान-कर्म-उपासना	25.00
38.	दिव्य-ज्ञान	35.00
39.	महाभारत एक दिव्य दृष्टि	80.00
40.	महर्षि-विश्वामित्र का धनुर्याग	25.00
41.	आत्म-उत्थान	30.00
42.	तप का महत्व	30.00
43.	अध्यात्मवाद	25.00
44.	ब्रह्मविज्ञान	35.00
45.	वैदिक-प्रभा	30.00
46.	प्रकाश की ओर	35.00
47.	कर्तव्य में राष्ट्र	35.00
48.	वैदिक-विज्ञान	35.00
49.	धर्म से जीवन	30.00
50.	आत्मा का भोजन	35.00
51.	साधना	30.00
52.	त्रेताकालीन-विज्ञान	40.00
53.	यज्ञोमयी-विष्णु	40.00
54.	यौगिक प्रवचन माला भाग-6	60.00
55.	स्वर्ग का मार्ग	40.00
56.	यौगिक प्रवचन माला भाग-7	60.00
57.	माता मदालसा	40.00
58.	यौगिक प्रवचन माला भाग-8	60.00
59.	यौगिक प्रवचन माला भाग-9	65.00
60.	यौगिक प्रवचन माला भाग-10	70.00
61.	याग एक सर्वाङ्ग पूजा	80.00
62.	यौगिक प्रवचन माला भाग-11	80.00
	पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज एवम्, कर्म भूमि लाक्षागृह	10.00

मासिक सहयोग

श्री हरीराम गुप्ता, केसर स्टील, वजीरपुर, दिल्ली	1000 रुपये
श्री विवेक त्यागी, अल्कापुरी, हापुड़	1000 रुपये
श्री चिंतामणि त्यागी एवं श्री जगमोहन त्यागी बरला, मुजफ्फरनगर	1000 रुपये
श्री अरुण त्यागी, राजनगर, गाजियाबाद	500 रुपये
श्री संजीव त्यागी (दिनकरपुर) फरीदाबाद	500 रुपये
श्री विनोद त्यागी सुपुत्र श्री जयप्रकाश त्यागी मकनपुर, गाजियाबाद	500 रुपये
श्री वी.पी. सिंह, वसुंधरा, गाजियाबाद	250 रुपये
डॉ. शुचि, डॉ. राजीव, आणद, गुजरात	250 रुपये
श्रीमती शशि गुप्ता, नोएडा	125 रुपये
डॉ. ओ.पी. आर्य, आगरा	125 रुपये
श्री गुलजार सिंह, जगत पुरी, कृष्णा नगर, दिल्ली	100 रुपये
श्रीमती वीना त्यागी, अलीगढ़।	100 रुपये
मा. कार्तिक त्यागी सुपौत्र श्री रामनिवास त्यागी ग्राम भंगेल, नोएडा	251 रुपये
मा. लोमश त्यागी सुपौत्र श्री रामनिवास त्यागी ग्राम भंगेल, नोएडा	251 रुपये
मास्टर कवन्धि, रामप्रस्थ, गाजियाबाद	101 रुपये
मास्टर सिद्धार्थ, अँकुर अपार्टमैन्ट, दिल्ली	101 रुपये

वैदिक अनुसन्धान समिति के आजीवन सदस्य बनने के लिए शुल्क 800 रु. और वार्षिक सदस्य बनने के लिए शुल्क 100 रु. है जिसको आप समिति के पते के साथ-साथ निम्न किसी एक पते पर भी डाक द्वारा भेजकर सदस्य बन सकते हैं–

1. डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रकाश, प्रकाशन मंत्री
   ए-59, पंचशील एन्क्लेव, नई दिल्ली-110017, फोन : 011-26498737
2. सुश्री नीरू अबरोल, कोषाध्यक्ष
   K-3, लाजपत नगर,-III, नई दिल्ली-110024 फोन : 011-41721294
3. श्री जितेन्द्र चौधरी, प्रचार मन्त्री
   ए-84, मालवीय नगर, नई दिल्ली-110017, मोबाइल : 9811707343

शृङ्गीऋषि बेवसाईट

Website : www.shringirishi.in
Email : www.contact@shringirishi.in

योगमुद्रा में प्रवचन करते हुए पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज

उद्‌बोधन

आज हम अपने मानव जीवन को अपनाने का प्रयास करें। पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ इनका शोधन करने का प्रयास करें। इन्हें तपाना है, क्योंकि बिना तप के मानव कदापि भी इन्द्रियों का स्वामी नहीं बन सकता। आज हम अपनी इन्द्रियों का शोधन करने का प्रयास करें। जैसे प्राणों का बिछौना जल कहलाया गया है और उसके ऊपर का जो वस्त्र है वह अन्न कहलाया गया है। इसी प्रकार मानव के तप के लिए मन शोधन करने की आवश्यकता है। मन का बिछौना क्या है? मन का बिछौना भी अन्न कहलाता है। क्योंकि अन्न की प्रतिभा से मन की उत्पत्ति हुआ करती है। उससे स्मरण शक्ति आती है। स्मरण शक्ति ज्ञान का केन्द्र कहलाया गया है। इसलिए मन और प्राण दोनों का मिलान करना है।

पूज्यपाद गुरुदेव

वर्ष 42 : अंक : 500
मई 2014

मूल्यः
दस रुपये

प्रकाशक, मुद्रक : डा० मधुसूदनेश्वर प्रकाश (प्रकाशन मंत्री वै.अ.स.) द्वारा वैदिक अनुसंधान समिति पंजी०
के लिए नवप्रभात प्रिंटिंग प्रैस, दिल्ली से छपवाकर सी-38,
शिवालिक मालवीय नगर, नई दिल्ली-17 से प्रकाशित।
(अवै०) सम्पादक : डा० मधुसूदनेश्वर प्रकाश, दूरभाष : 26498737

POSTED AT N.D.PS.O ON 10/11-05-2014
Published on 5th day of the same month